* ॐ श्रीपरमात्मने नमः *

कल्याण

मूल्य १० रुपये

माता कौसल्याका सौभाग्य

भगवती अन्नपूर्णा

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते। पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥
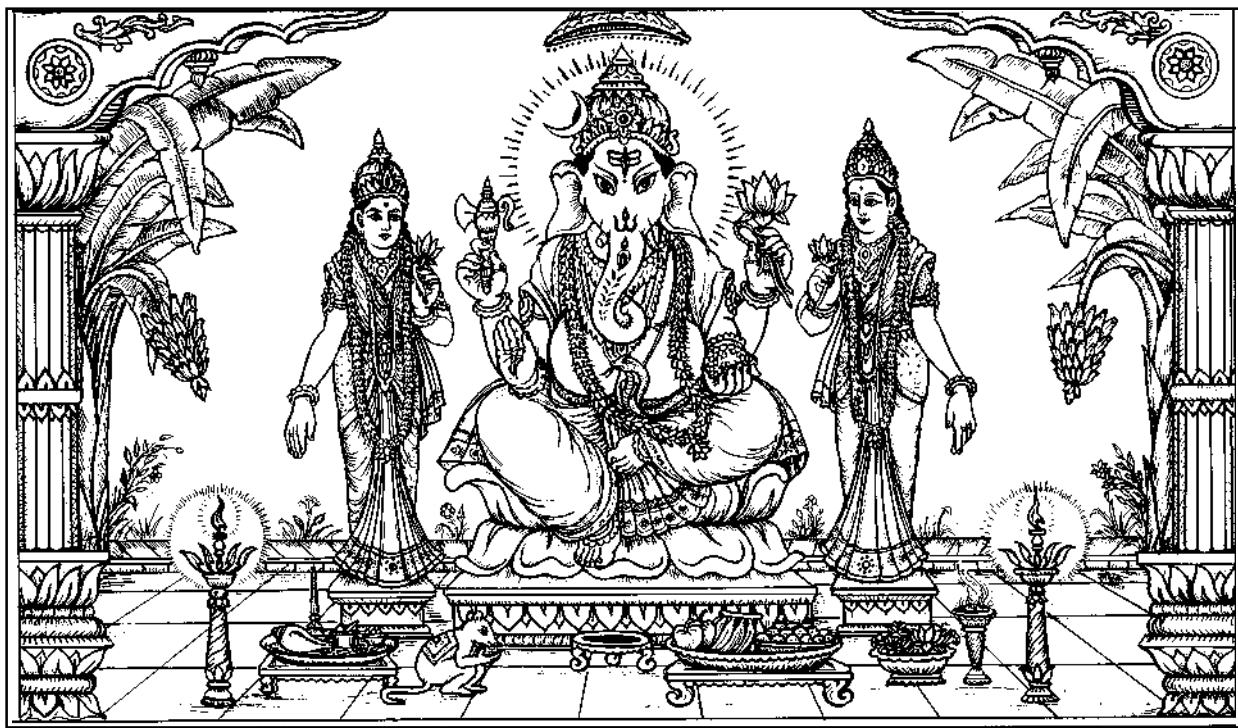
कल्याण

यतो वेदवाचो विकुण्ठा मनोभिः सदा नेति नेतीति यत्ता गृणन्ति।
परब्रह्मरूपं चिदानन्दभूतं सदा तं गणेशं नमामो भजामः॥

वर्ष ९५ | गोरखपुर, सौर वैशाख, वि० सं० २०७८, श्रीकृष्ण-सं० ५२४७, अप्रैल २०२१ ई० | संख्या ४

पूर्ण संख्या ११३३

अन्नपूर्णा-महिमा

लालची ललात, बिललात द्वार-द्वार दीन, बदन मलीन, मन मिटै ना बिसूरना।
ताकत सराध, कै बिबाह, कै उछाह कछू, डोलै लोल बूझत सबद ढोल-तूरना॥
प्यासेहूँ न पावै बारि, भूखें न चनक चारि, चाहत अहारन पहार, दारि घूर ना।
सोकको अगार, दुखभार भरो तौलौं जन, जौलौं देबी द्रवै न भवानी अन्नपूरना॥

जबतक देवी अन्नपूर्णा कृपा नहीं करतीं, तभीतक मनुष्य लालची होकर (टुकड़े-टुकड़ेके लिये) लालायित होता है और दीन तथा मलिन-मुख हो द्वार-द्वारपर बिलबिलाता रहता है, परंतु उसके मनकी चिन्ता दूर नहीं होती; कहीं श्राद्ध, विवाह अथवा कोई उत्सव तो नहीं, इस बातकी टोहमें रहता है, चंचल होकर इधर-उधर घूमता है और यदि कहीं ढोल या तुरहीका शब्द होता है तो पूछता है [कि यहाँ कोई उत्सव तो नहीं है?] प्यास लगनेपर उसे जल नहीं मिलता, भूख होनेपर चार चने भी नहींमिलते। पहाड़के समान भोजनकी इच्छा होती है, परंतु घूरेपर पड़ी दाल भी नहीं मिलती। इस प्रकार वह शोकका आश्रयस्थान और दुःखके भारसे दबा रहता है। **[कवितावली]**

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

(संस्करण २,००,०००)

कल्याण, सौर वैशाख, वि० सं० २०७८, श्रीकृष्ण-सं० ५२४७, अप्रैल २०२१ ई०

विषय-सूची

विषय	पृष्ठ-संख्या

चित्र-सूची

जय पावक रवि चन्द्र जयति जय। सत्-चित्-आनँद भूमा जय जय॥
जय जय विश्वरूप हरि जय। जय हर अखिलात्मन् जय जय॥
जय विराट् जय जगत्पते। गौरीपति जय रमापते॥

एकवर्षीय शुल्क ₹ २५०

पंचवर्षीय शुल्क ₹ १२५०

विदेशमें Air Mail शुल्क — **वार्षिक** US$ 50 (` 3,000), **पंचवर्षीय** US$ 250 (` 15,000) — Us Cheque Collection Charges 6$ Extra

संस्थापक—**ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका**

आदिसम्पादक—**नित्यलीलालीन भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार**

सम्पादक—**राधेश्याम खेमका**, सहसम्पादक—**डॉ० प्रेमप्रकाश लक्कड़**

केशोराम अग्रवालद्वारा गोबिन्दभवन-कार्यालय के लिये गीताप्रेस, गोरखपुर से मुद्रित तथा प्रकाशित

website : **gitapress.org** | e-mail : **kalyan@gitapress.org** | ✆ **09235400242 / 244**

सदस्यता-शुल्क—**व्यवस्थापक—'कल्याण-कार्यालय', पो० गीताप्रेस—२७३००५, गोरखपुर को भेजें।**

Online सदस्यता हेतु gitapress.org पर **Kalyan** या **Kalyan Subscription** option पर click करें।

अब 'कल्याण' के मासिक अङ्क gitapress.org अथवा **book.gitapress.org** पर नि:शुल्क पढ़ें।

कल्याण

याद रखो—दुनियाके लोग तुम्हें अच्छा मानते हैं, तुम्हारा बड़ा यश हो गया है, तुम्हारी जहाँ-तहाँ पूजा—अभ्यर्थना होती है, इसीसे कभी यह मत मान बैठो कि तुम वास्तवमें अच्छे हो गये हो। अच्छे तो तुम तब होओगे, जब तुम्हारा मन निर्मल हो जायगा। मनमेंसे कुविचार और कुभावोंका सर्वथा अभाव हो जायगा। सद्विचार तथा सद्भावोंसे मन भर जायगा।

याद रखो—सद्विचारों और सद्भावोंको भी यदि भगवान्का आश्रय न देकर स्वतन्त्र रखना चाहोगे तो उनमेंसे एक अहंकाररूप बड़ा भारी दोष उत्पन्न होगा, जो समस्त सद्विचारों और सद्भावोंका नाश कर डालेगा।

आत्मनिरीक्षण करो, अपने जीवनके बीते हुए तथा वर्तमान कार्योंकी ओर देखो; तुम यदि अच्छी तरह देखोगे तो तुम्हें स्पष्ट दिखायी देगा कि तुम जो अपनेको—दूसरोंके कहनेपर ही बहुत अच्छा मान रहे थे, वह तुम्हारी भूल थी। तुम्हारे अन्दर इतनी बुराई, इतनी गन्दगी भरी हुई है कि उसको देखकर दूसरे सभीका जीवन तुम्हें अच्छा प्रतीत होने लगेगा। तुम्हारे अन्दर एक नम्रता आयेगी और तब तुम परम पावन भगवान्की ओर देखोगे—उनके चरणोंमें लुटकर आर्तभावसे कातर स्वरसे उन्हें पुकारोगे।

याद रखो—तुममें कितने ही दुर्विचार, दुर्गुण और दुराचार क्यों न हों, भगवान् उनको नहीं देखेंगे। भगवान् देखेंगे तुम्हारे वर्तमान हृदयको, भगवान् सुनेंगे तुम्हारी करुण पुकारको।

याद रखो—भगवान्पर, एकमात्र भगवान्पर भरोसा आते ही, भगवान्की अकारण कृपा, उनके अहैतुक स्नेह, उनके सुहृद्-स्वभावपर विश्वास करते ही तुम्हारे दुर्विचार, दुर्गुण और दुराचार वैसे ही नष्ट हो जायँगे, जैसे सूर्यके उदय होते ही अमावास्याकी रात्रिका घोर अन्धकार कट जाता है।

याद रखो—भगवान् अकारणकरुण हैं, वे प्राणिमात्रके सहज सुहृद् हैं, उनका हृदयद्वार सबके लिये सर्वदा उन्मुक्त है, निर्भय होकर उनके चरणोंमें जा सकते हो; पर नहीं जा रहे हो, इसका यही कारण है कि तुम्हें अपने दुर्गुण, दुर्विचार और दुराचारोंसे घृणा नहीं है, उनको तुमने अपने जीवनक्षेत्रमें बसा ही नहीं लिया है, तुम्हारा उनमें अनुराग है, तुम उनको अपना साथी मानते हो। उनको आदरपूर्वक रखना चाहते हो, उनके साथ रहनेपर गौरवका अनुभव करते हो।

याद रखो—जब जिस क्षण तुम्हें वे बुरे प्रतीत होने लगेंगे, उनका साथ रहना तुम्हें दु:खदायी दीखने लगेगा, उनके साथ रहनेमें गौरवका नहीं, पर एक महान् यन्त्रणाका अनुभव तुम्हें होगा, पर तुम अपना उनसे पिण्ड छुड़ानेमें असमर्थ पाओगे, तब बस, उसी क्षण तुम्हें किसी सहायककी, किसी ऐसेकी, जो मित्रका स्वाँग धारण करके तुम्हारे साथ बसे हुए इन घोर शत्रुओंसे छुटकारा दिलानेमें तुम्हारी सहायता करे, आवश्यकता प्रतीत होगी। तुम्हारा हृदय रो उठेगा, तुम सबसे निराश होकर आर्तत्राणपरायण एकमात्र शरण्य भगवान्की शरण ग्रहण करोगे, उन्हें पुकारोगे—'नाथ! तुम्हारे सिवा कोई भी ऐसा नहीं है, जो मुझ-सरीखे पामर, पापजीवन, महान् दुराचारी, दुर्विचार और दुर्गुण आदिको अपने जीवन-संगी मानकर उन्हींको जीवनका स्वरूप-स्वभाव बना लेनेवाले, समस्त सद्‌गुणोंसे रहित और सबके द्वारा परित्यक्त, घृणित व्यक्तिको अपना ले। दयामय! तुम अपने सहज सुहृद्‌भावसे ही मुझे बचा लो—मेरा इन दुष्टोंसे पिण्ड छुड़ाओ।' बस, तुम्हारी अनन्य पुकार सुनते ही भगवान्की कृपाके तुम्हें दर्शन होंगे। भगवान्का वरद हस्त तुम्हें दिखायी देगा और भगवान्की दिव्य वाणी तुम्हें सुनायी देगी—'मत डरो, तुम्हारे पाप नाश हो गये, तुम्हारे ये पाप-ताप, दुर्गुण, दुर्विचार, दुराचार सब नष्ट हो गये; तुम मेरे भक्त हो गये। तुम्हारा कभी पतन नहीं हो सकता। तुम मेरे हो—मेरे रहोगे।' **'शिव'**

आवरणचित्र-परिचय—

माता कौसल्याका सौभाग्य

कौसल्याजी दक्षिण कोसलराजकी पुत्री थीं। उनका विवाह अयोध्याके युवराज दशरथसे हुआ। आरम्भसे ही कौसल्याजी धार्मिक थीं। वे निरन्तर भगवान्‌की पूजा करती थीं, अनके व्रत रखती थीं और नित्य ब्राह्मणोंको दान देती थीं। कौसल्याजीका सारा जीवन तपोमय एवं निर्विकार रहा।

बहुत समय बीत जानेपर भी महाराज दशरथको किसी भी रानीसे जब संतानकी प्राप्ति नहीं हुई, तब महर्षि वसिष्ठके आदेशसे शृंगी ऋषि आमन्त्रित हुए। पातिव्रत्य, धर्म, साधुसेवा, भगवदाराधना सब एक साथ सफल हुई। भगवान् रामने माता कौसल्याकी गोदको विश्वके लिये वन्दनीय बना दिया। भगवान्‌की विश्वमोहिनी मूर्तिके दर्शनसे उनके सारे कष्ट परमानन्दमें बदल गये। गोस्वामीजी वर्णन करते हैं—

ब्यापक ब्रह्म निरंजन निर्गुन बिगत बिनोद।
सो अज प्रेम भगति बस कौसल्या कें गोद॥

काम कोटि छबि स्याम सरीरा। नील कंज बारिद गंभीरा॥
अरुन चरन पंकज नख जोती। कमल दलन्हि बैठे जनु मोती॥
रेख कुलिस ध्वज अंकुस सोहे। नूपुर धुनि सुनि मुनि मन मोहे॥
कटि किंकिनी उदर त्रय रेखा। नाभि गभीर जान जेहिं देखा॥
भुज बिसाल भूषन जुत भूरी। हियँ हरि नख अति सोभा रूरी॥
उर मनिहार पदिक की सोभा। बिप्र चरन देखत मन लोभा॥
कंबु कंठ अति चिबुक सुहाई। आनन अमित मदन छबि छाई॥
दुइ दुइ दसन अधर अरुनारे। नासा तिलक को बरनै पारे॥
सुंदर श्रवन सुचारु कपोला। अति प्रिय मधुर तोतरे बोला॥
चिक्कन कच कुंचित गभुआरे। बहु प्रकार रचि मातु सँवारे॥
पीत झगुलिआ तनु पहिराई। जानु पानि बिचरनि मोहि भाई॥
रूप सकहिं नहिं कहि श्रुति सेषा। सो जानइ सपनेहुँ जेहिं देखा॥

जो सर्वव्यापक, निरंजन (मायारहित), निर्गुण, विनोदरहित और अजन्मा ब्रह्म हैं, वे ही प्रेम और भक्तिके वश कौसल्याजीकी गोदमें [खेल रहे] हैं। उनके नील कमल और गम्भीर (जलसे भरे हुए) मेघके समान श्याम शरीरमें करोड़ों कामदेवोंकी शोभा है। लाल-लाल चरणकमलोंके नखोंकी [शुभ्र] ज्योति ऐसी मालूम होती है, जैसे [लाल] कमलके पत्तोंपर मोती स्थिर हो गये हों। [चरणतलोंमें] वज्र, ध्वजा और अंकुशके चिह्न शोभित हैं। नूपुरकी ध्वनि सुनकर मुनियोंका भी मन मोहित हो जाता है। कमरमें करधनी और पेटपर तीन रेखाएँ हैं। नाभिकी गम्भीरताको तो वे ही जानते हैं, जिन्होंने उसे देखा है। बहुत-से आभूषणोंसे सुशोभित विशाल भुजाएँ हैं। हृदयपर बाघके नखकी बहुत ही निराली छटा है। छातीपर रत्नोंसे युक्त मणियोंके हारकी शोभा और ब्राह्मण (भृगु)-के चरणचिह्नको देखते ही मन लुभा जाता है। कण्ठ शंखके समान (उतार-चढ़ाववाला, तीन रेखाओंसे सुशोभित) है और ठोड़ी बहुत ही सुन्दर है। मुखपर असंख्य कामदेवोंकी छटा छा रही है। दो-दो सुन्दर दँतुलियाँ हैं, लाल-लाल ओठ हैं। नासिका और तिलक [के सौन्दर्य]-का तो वर्णन ही कौन कर सकता है। सुन्दर कान और बहुत ही सुन्दर गाल हैं, मधुर तोतले शब्द बहुत ही प्यारे लगते हैं। जन्मके समयसे रखे हुए चिकने और घुँघराले बाल हैं, जिनको माताने बहुत प्रकारसे बनाकर सँवार दिया है। शरीरपर पीली झँगुली पहनायी हुई है। उनका घुटनों और हाथोंके बल चलना मुझे बहुत ही प्यारा लगता है। उनके रूपका वर्णन वेद और शेषजी भी नहीं कर सकते। उसे वही जानता है, जिसने कभी स्वप्नमें भी देखा हो।

माता कौसल्याका महान् सौभाग्य है कि उन्होंने सूर्यवंशके सूर्य श्रीरामको जन्म दिया।

बंदउँ कौसल्या दिसि प्राची। कीरति जासु सकल जग माची॥

श्रद्धाका तत्त्व-रहस्य

(ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)

जो मनुष्य किसी महात्माको वास्तवमें महात्मा समझ लेता है, उसकी उनमें परम श्रद्धा हो जाती है तथा परम श्रद्धा हो जानेके बाद वह उनके शरण हो जाता है। फिर उस श्रद्धालुको कल्याणके लिये अन्य कुछ भी साधन नहीं करना पड़ता। उससे उन महात्माकी चेष्टा, इच्छा, संकेत और सम्मतिके अनुसार ही क्रिया अपने-आप ही होती रहती है। जैसे भगवान्‌के सर्वथा अनन्य-शरण ग्रहण करके पूर्णरूपेण उन्हींपर निर्भर रहनेवाले भगवत्परायण भक्तकी सारी चेष्टा भगवान्‌से ही होती है। वह कुछ नहीं करता; क्योंकि उसमें कर्तापनका भाव रहता ही नहीं। वैसे ही महात्मामें श्रद्धा रखनेवालेकी क्रिया उनके अनुकूल ही हो जाती है। जिस प्रकार उच्चकोटिकी पतिव्रताकी समस्त चेष्टा अपने पतिके अनुकूल ही होती है,प्रत्युत उसकी अनुकूलतामें रुकावट डालनेकी भी उसमें सामर्थ्य नहीं रहती और जैसे कठपुतली सूत्रधारके नचाये ही नाचती है, इसी प्रकार जो महात्मा पुरुषके सर्वथा शरण है, उसकी यह सामर्थ्य नहीं रहती कि मैं ऐसा करूँ, वैसा करूँ; बल्कि वह तो कठपुतलीकी भाँति उनके नचाये ही नाचता है। महात्मा पुरुषके भाव, उनकी चेष्टा, संकेत और उद्देश्यके अनुसार अपने-आप उससे क्रिया होती रहती है। उसे तो पूरा ज्ञान भी नहीं रहता कि मैं क्या कर रहा हूँ। इस प्रकारका श्रद्धालु उच्च श्रेणीका होता है और उसे परम श्रद्धा होनेसे तत्काल परमात्माकी प्राप्ति भी हो जाती है।

इससे कुछ निम्न श्रेणीका श्रद्धालु वह है, जिसकी महात्मामें श्रद्धा तो है, पर वह उनका अनन्य भक्त नहीं है। हाँ, मुख्य भक्त अवश्य है। उसमें कर्तापनका भाव रहता है। ऐसा श्रद्धालु भी महात्माकी आज्ञाका उल्लंघन नहीं कर सकता। वह महात्माकी आज्ञाके सम्मुख अपने प्राणोंकी भी परवा नहीं करता। वह अपने प्राणोंका त्याग कर सकता है, पर महात्माकी आज्ञाका त्याग नहीं कर सकता। उसकी अनन्य श्रद्धा तो नहीं है, किंतु मुख्य श्रद्धा है। उसको जब मालूम हो जाता है कि महात्माकी यह सम्मति है, तब फिर वह उससे बाहर नहीं जा सकता। उससे बाहर जानेकी उसमें सामर्थ्य ही नहीं रहती। विपरीत जानेकी बात तो दूर रही, वह उनकी सम्मतिमें बाधा भी नहीं डाल सकता। यदि कदाचित् भूलसे कोई कार्य महात्माकी सम्मतिके विपरीत हो जाता है तो उसे पश्चात्ताप होता है; क्योंकि उसमें कर्तापनका अभिमान है और जहाँ कर्तापनका अभिमान है, वहाँ कुछ स्वतन्त्रता है। परंतु जहाँ परम श्रद्धा हो जाती है, वहाँ कोई स्वतन्त्रता नहीं रहती। अतः उसे किसी प्रकारके चिन्ता-विषाद और पश्चात्ताप होते ही नहीं।

इससे भी निम्न श्रेणीका श्रद्धालु वह है, जिसकी महात्मामें भी श्रद्धा है और संसारमें भी विश्वास है। सब समय श्रद्धा, विश्वास समान नहीं रहते। कभी महात्मामें नौ आना हो जाती है, तो कभी संसारमें। इस प्रकार दोनोंका ही उसपर असर रहता है। वह कभी संसारको आदर देता है तो कभी महात्माको। जब संसारमें आसक्त होता है, तब कहीं धनके लिये, पदार्थोंके लिये, अपने शरीरके आरामके लिये, मान-बड़ाईके लिये महात्माके वचनोंकी अवहेलना भी कर देता है। कहीं पदार्थोंकी विशेष सत्ता मानकर नीतिकी दृष्टिसे महात्माके कथनको शास्त्रसम्मत, धर्मयुक्त और न्यायसंगत नहीं समझता और उनके वचनोंकी अवज्ञा भी कर देता है तथा कहीं अपने मन-बुद्धिके भ्रमसे अनेक युक्तियोंसे उनकी बातोंका प्रतीकार भी कर देता है। इसी प्रकार जब बुद्धिके विवेकके द्वारा, शास्त्रकी दृष्टिसे, सुनी हुई बातोंकी दृष्टिसे, मन-बुद्धिमें महात्माके प्रति श्रद्धापूर्वक आस्था और महत्त्व हो जानेपर महात्माके प्रति प्रेम और विश्वासका आविर्भाव होता है, तब उस समय संसारकी, धनकी, शरीरकी, मान-बड़ाईकी अवहेलना कर देता है तथा महात्माकी बात मानकर उनके वचनोंका विशेष आदर करता है, किंतु इन बातोंको समझकर भी जिस समय उसकी अधिक प्रीति संसारकी ओर हो जाती है, उस समय महात्माकी अवहेलना भी कर देता है। वह जितना महात्माका प्रभाव समझता है, उतना ही आदर करता है और जितना आदर करता है, उतना ही उनमें प्रेम होता है और प्रेमके अनुसार ही उसको लाभ मिलता है।

प्रार्थनाके वे मधुर क्षण!

(श्रीकृष्णदत्तजी भट्ट)

माला तो कर में फिरै, जीभ फिरै मुख माहिं।

मनुआ तो चहुँ दिसि फिरै, यह तो सुमिरन नाहिं॥

और रात-दिन, सुबह-शाम, हम यही तो करते हैं। हाथमें माला घूम रही है, सुमिरनी घूम रही है, तसबीह घूम रही है।

मुखसे राम-नामका उच्चारण हो रहा है।

'ॐ' का जप चल रहा है। 'अल्लाह' की रट लग रही है।

'ॐ नमः शिवाय' की ध्वनि निकल रही है।

'श्रीकृष्ण गोविन्द हरे मुरारे' की आवृत्ति हो रही है।

हम सोच रहे हैं कि हम भगवान्‌का नाम ले रहे हैं। उपासना कर रहे हैं। प्रार्थना कर रहे हैं। इबादत कर रहे हैं।

लेकिन असलियत कुछ और है।

मामला कुछ और है।

अर्थात्?

हम प्रार्थनाके नामपर प्रार्थनाका उपहास कर रहे हैं। उपासनाका मखौल उड़ा रहे हैं!

× × ×

क्यों?

ऐसी क्या बात है?

बात यह है कि हमारे मनीराम इस समय किसी दूसरी दुनियाकी सैर कर रहे हैं।

वे किसी दूसरी ही उधेड़-बुनमें फँसे हैं।

और यह तो है ही कि जहाँ हमारा मन, वहाँ हम।

मन हमारी नकेल जिधर घुमाता है, उधर ही हम घूम जाते हैं।

मन घरमें है तो हम घरमें हैं। वनमें है तो वनमें।

मन सुखमें है तो हम सुखमें हैं। दुःखमें है तो दुःखमें।

मन निराश है तो हम निराश हैं। मस्त है तो हम मस्त हैं।

कहा ही है कि ***'मन चंगा तो कठौतीमें गंगा।'***

× × ×

मन प्रार्थनामें लगा है तो हम प्रार्थना करते हैं।

मन ध्यानमें लगा है तो हम ध्यान करते हैं।

मन जप करता है तो हम जप करते हैं।

मन उपासना करता है तो हम उपासना करते हैं।

इसीलिये किसी अनुभवीने कहा है—

मन लोभी मन लालची, मन चंचल, मन चोर।

मनके मते न चालिये, पलक-पलक मन और॥

मन जो संकल्प-विकल्प करता है, जो सोचता है, उसीके साथ वह एकाकार हो जाता है।

मनके अनुकूल ही हम बनते हैं।

मन पापी तो हम पापी।

मन पुण्यात्मा तो हम पुण्यात्मा।

मनकी इस शक्तिके कारण ही हम कभी डूबते हैं, कभी उतराते।

तभी तो यह हमारे बन्धनका, हमारे मोक्षका कारण बन बैठा है—

मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः।

× × ×

मनको रोकनेके लिये ही सारे साधन हैं।

मनको वशमें करनेके लिये ही तो सारा जप-तप है।

मनको काबूमें करनेके लिये ही तो ज्ञान, भक्ति और योग हैं।

योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः।—पतंजलि यही तो कहते हैं।

भक्ति भी तो वही है।

तुलसीके राम कहते हैं—

जननी जनक बंधु सुत दारा। तनु धनु भवन सुहृद परिवारा॥

सब कै ममता ताग बटोरी। मम पद मनहि बाँध बरि डोरी॥

गीताके कृष्ण भी कहते हैं—

मय्यर्पितमनोबुद्धिर्यो मद्भक्तः स मे प्रियः।

मनको प्रभु-चरणारविन्दोंमें बाँध दो—सबका निष्कर्ष यही है। सारे शास्त्रोंका निचोड़ यही है। सारे धर्मग्रन्थोंका लक्ष्य यही है। सारी साधनाका तात्पर्य यही है।

× × ×

और मन जब उस प्रियतमके स्मरणमें डूब गया, उसकी यादमें लग गया, उसके नाममें, उसके गुणमें, उसके कीर्तनमें रम गया, फिर तो कहना ही क्या!

शब वही शब है, औ दिन वही दिन,
जो याद तेरीमें गुजर जाये!

धन्य हो उठता है वह दिन, धन्य हो उठती है वह रात, जो उस परमप्रियतमके स्मरणमें बीतती है।

मन जहाँ मालिककी यादमें मशगूल हुआ, प्यारेकी मुहब्बतमें मस्त हुआ, प्रियतमके ध्यानमें लवलीन हुआ—बस, सब सफल।

यही तो प्रार्थना है।
यही तो पूजा है।
यही तो उपासना है।
यही तो इबादत है।
यही तो बन्दगी है।
यही तो 'प्रेयर' (Prayer) है।

× × ×

और कहाँ हम कर पाते हैं ऐसी प्रार्थना!

इसीलिये एक साधक कहता है—

Lord, teach us how to pray!

'हे प्रभु, मुझे सिखा दो प्रार्थना करना!'

कैसी सुन्दर व्याख्या की गयी है प्रार्थनाकी?—

Paryer is the soul's sincere desire,
Uttered or unexpressed,
The motion of a hidden fire,
That trembles in the breast,

आत्माकी हार्दिक भावनाका नाम है प्रार्थना।
दिलके भीतर भरी आगका नाम है प्रार्थना।
उसके लिये न मन्त्रकी जरूरत है, न तन्त्रकी।

हृदयकी सच्ची भावना प्रभुके चरणोंमें निवेदन कर देना ही तो प्रार्थना है।

यह जरूरी नहीं कि उसके लिये वेदकी ऋचाएँ हों या कुरानशरीफकी आयतें।

कोई भी टूटी-फूटी भाषा उसमें चलती है। फिर यह प्रकट की जाय, चाहे न प्रकट की जाय।

जरूरत केवल एक चीजकी है और वह है हृदयकी शुद्ध भावना।

× × ×

काँकर-पाथर जोरि कै मसजिद लई चुनाय।
ता चढ़ि मुल्ला बाँग दे, क्या बहिरा हुआ खुदाय॥

वे परम प्रभु तो हृदयका भाव देखते हैं, हृदयकी पुकार सुनते हैं। शब्दसे, भाषासे, आडम्बरसे उन्हें क्या लेना-देना?

× × ×

Prayer is the simplest form of speech
That infant lips can cry.
Prayer the sublimest strains that reach.
The Majesty on high.

प्रार्थनामें यह नहीं देखा जाता कि वह किस भाषामें की गयी, किन शब्दोंमें की गयी—उसमें केवल यह देखा जाता है कि उसमें भगवद्भक्तिकी तरी है या नहीं—हृदयकी निर्मल भावना है या नहीं और जब ऐसी तरी होती है, तब जो कुछ किया जाता है, वह प्रार्थना ही होती है।

जेता चलूँ, तेती परदखिना, जो कछु करूँ सो पूजा।

× × ×

ऐसी ही प्रार्थनामें जीवनकी सार्थकता है, जन्मकी सार्थकता है। जब कोई साधक ऐसी प्रार्थना करने लगता है, तब उसके सारे शोक-संताप सदाके लिये दूर हो जाते हैं।

तब वह सब कुछ छोड़ देता है। रात-दिन सुबह-शाम वह प्रार्थनाके ही मधुर क्षणोंकी प्रतीक्षा करता रहता है। वह कहता है—

My God, is any hour so sweet,
From blush of morn to evening star,
As that which calls me to Thy feet,
The hour of prayers?

उषाकी मधुमय वेला हो, भगवान् भास्करकी अस्ताचलगामिनी सुषमा हो; उस समय प्रभु-पदारविन्दोंमें अपना हृदय उँडेलनेकी साधना जिसने कर ली, उसके आनन्दको कौन पा सकता है? धन्य हो उठता है उसका जीवन। भला, प्रार्थनाके इन मधुर क्षणोंसे बढ़कर भी जीवनके कोई अन्य क्षण हो सकते हैं?

रोम-रोम मस्त है, आनन्दमें डूबा है। याद है तो केवल उस परम प्रियतमकी। ध्यान है तो केवल उसीका। संसारका कोई चिन्तन कहीं पास नहीं फटकता।

Blest is that tranquil hour of morn,
And blest that solemn hour of eve,

When on the wings of prayer unborne
The world I leave.

× × ×

उस समय होता क्या है?

साधकके सारे पाप-ताप दूर हो जाते हैं।

उसकी सारी चिन्ताएँ, वेदनाएँ समाप्त हो जाती हैं।

उसका सारा भय जाता रहता है।

उसकी सारी शंकाओंका निरसन हो जाता है।

अनाथोंके नाथ, दुखियोंके दुःखनाशक, असहायोंके सहायक परम प्रभु जब सामने हों, तब और होगा ही क्या?

Then is my strength by Thee renewed,
Then are my sins by Thou forgiven,
Then dost Thou cheer my solitude,
With hopes of heaven.

उस समय साधककी शक्ति दुगुनी हो उठती है। परम प्रभु उसके सारे अपराध क्षमा कर देते हैं। उसका प्रार्थनाका एकान्त कोना स्वर्गीय आनन्दसे जगमगा उठता है। चारों ओर शान्ति, सुख और आनन्दकी त्रिवेणी लहराने लगती है।

कौन वर्णन कर सकता है इस आनन्दका?

उसमें सारी चिन्ताओंका शमन हो जाता है, सारे अभावोंका अभाव।

No words can tell what sweet relief
Here for every want I find,
What strength for warfare, balm for grief,
What peace of mind.

Hushed is each doubt, gone every fear,
My spirit seems in heaven to stay,
And even the penitential tear
Is wiped away.

प्रार्थनाके ये मधुर क्षण जीवनको ऊपर उठाते हैं। सारे पाप-ताप, सारे दुःख-संताप, सारे भय-सन्देह दूर हो जाते हैं। सारे प्रलोभन शान्त हो जाते हैं।

क्यों न हम ऐसे मधुर क्षणोंकी प्राप्तिके लिये उत्सुक रहें?

Sweet hour of prayer, sweet hour of prayer,
That calls me from a world of care,
And bids me, at my Father's throne,
Make all my wants and wishes known.
In seasons of distress and grief,
My soul has often found relief,
And oft escaped the tempter's snare,
By Thy return, sweet hour of prayer.

× × ×

और प्रार्थनाकी मुद्रा?

उसे देखना है तो भरतकी ओर देखिये—

पुलक गात हियँ सिय रघुबीरू।
जीह नामु जप लोचन नीरू॥

शरीरका रोम-रोम पुलकित है। हृदयमें सीतारामका ध्यान लगा है। जीभसे भी 'सियाराम, सियाराम' की रट लगी है। आँखोंसे आँसुओंकी रेलपेल मची है।

काश, हम कर पाते ऐसी प्रार्थना!

धन्य हो उठते हमारे जीवनके वे मधुर क्षण!

प्रार्थना एक रचनात्मक और सक्रिय वस्तु है। ज्यों ही हम अपने मंगलके लिये अथवा अपने मित्रके मंगलके लिये प्रार्थना करते हैं, एक नये प्रकारकी चेष्टाका प्रारम्भ हो जाता है। सही विचार-धारा और सही प्रार्थना एक नये जगत्का निर्माण प्रारम्भ कर देती है। मंगलके निधान ईश्वरके प्रति की गयी प्रार्थना हमारे लिये मंगलके द्वार खोल देती है। हमारे अन्तर्मनमें मंगल विचारोंका प्रवाह चल पड़ता है। यही मंगलमयता हमारे जीवनमें "पहले भीतर, फिर बाहर" बिखर जाती है। जीवनमें जो अशुभ है, शरीरमें जो अस्वास्थ्य है, चित्तमें जो अशान्ति है, व्यापारमें जो असफलता है, व्यवहारमें जो अभद्रता है, वह सब केवल इसीलिये है कि न हमारे विचारोंमें मंगलमयता है और न मंगलमय भगवान्‌से हमारा सम्पर्क है। —चार्ल्स फिल्मोर

अनुकूलता और प्रतिकूलता—दोनोंमें भगवान्‌की कृपा

(नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)

जब मनुष्य केवल संसारके अनुकूल भोगपदार्थोंकी प्राप्तिमें भगवत्कृपा मानता है, तब वह बड़ी भारी भूल करता है। भगवान्‌की कृपा तो निरन्तर है, सबपर है और सभी अवस्थाओंमें है, किंतु जो ये अनुकूल भोगपदार्थ हैं, जिनमें अनुकूल बुद्धि रहती है, ये सब तो मनुष्यको मायाके, मोहके बन्धनमें बाँधनेवाले होते हैं। मायाके मोहमें बाँधकर जो भगवान्‌से अलग कर देनेवाली चीज है, उसकी प्राप्तिमें भगवत्कृपा मानना ही गलती है। पर होता यह है कि जब मनुष्य भगवान्‌का भजन करता है, भगवान्‌के नामका जप करता है, रामायण और गीतादिका पाठ करता है और संसारके भोगोंकी प्राप्तिमें जरा-सी सफलता प्राप्त होती है,तब वह ऐसा मान लेता है कि मेरी यह कामना पूरी हो गयी। मुझे यह लाभ हो गया है। ऐसे पत्र मेरे पास बहुत आते हैं और मैं उन्हें प्रोत्साहित भी करता हूँ, परंतु यह चीज बड़ी गलत है। जहाँ मनुष्य अनुकूल भोगोंमें भगवान्‌की कृपा मानता है, वहाँ प्रतिकूलता होनेपर वह उलटी ही सोचेगा। वह कहेगा—'भगवान् बड़े निर्दयी हैं, भगवान्‌की मुझपर कृपा नहीं है।' अधिक क्षोभ होगा तो वह कह बैठेगा कि 'भगवान् न्याय नहीं करते।' इससे भी अधिक और क्षोभ होगा तो वह यहाँतक कह देगा कि 'भगवान् हैं ही नहीं, यह सब कोरी कल्पना है। भगवान् होते तो इतना भजन करनेपर भी ऐसा क्यों होता।' यों कहकर वह भगवान्‌को अस्वीकार कर देता है। इसलिये अमुक स्थितिकी प्राप्तिमें भगवत्कृपा है, यह मानना ही भूल है। पहले-पहले जब मनुष्यको सफलता मिलती है, तब तो उसमें वह भगवान्‌की कृपा मानता है, पर आगे चलकर वह कृपा रुक जाती है, छिप जाती है, वह कृपाको भूल जाता है। फिर तो वह अपनी कृतिको एवं अपने ही अहंकारको प्रधानता देता है। अमुक कार्य मैंने किया, अमुक सफलता मैंने प्राप्त की—इस प्रकार वह अपनी बुद्धिका, अपने बलका, अपनी चतुराईका, अपने कला-कौशलका घमण्ड करता है, अभिमान करता है। भगवान्‌को भूलकर वह अपने अहंकारकी पूजा करने लगता है। सफलता मैंने प्राप्त की है, इसलिये मेरी पूजा होनी चाहिये जगत्‌में। 'मैंने धनोपार्जन किया, मैंने विजय प्राप्त किया, मैंने अमुक सेवा की, मैंने राष्ट्रका निर्माण किया, मैंने राज्य, देश तथा धर्मकी रक्षा की'—इस प्रकार सर्वत्र प्रत्येक कर्ममें अपना 'अहं' लगाकर वह 'अहं'का पूजक तथा प्रचारक बन जाता है और जब इस 'अहं' की, 'मैं' की पूजा नहीं होती, उसमें किसी प्रकारका किंचित् भी व्यवधान उपस्थित होता है, तब वह बौखला उठता है, दल बनाता है और परस्पर दलबन्दी होती है। राग-द्वेष एवं शत्रुताका वायुमण्डल बनता है, बढ़ता है। मनुष्य जब ऐसे किसी प्रवाहमें बहने लगता है, तब भगवान् दया करके ब्रेक लगाते हैं। उसे उस पतनके प्रवाहसे लौटनेके लिये भगवान् कृपा करते हैं। श्रीमद्भागवतमें आया है—

बलिकी शक्ति बढ़ी। बलि विश्वविजयी हो गये। देवताओंकी शक्ति क्षीण हो गयी। देवता भयभीत होकर छिप गये। बलिका प्रतापसूर्य सम्पूर्ण विश्वपर छा गया। बलि भगवान्‌के भक्त थे, वे भगवान्‌की कृपा मानते थे। पर बलिके मनमें भी अपने इस विषयका अहंकार तो आया ही। उसमें निमित्त चाहे जो कुछ बना हो, पर भगवान्‌ने बलिपर कृपा की। बलिका सारा राज्य हरण कर लिया, बलिका सारा ऐश्वर्य अपहरण कर लिया। उक्त प्रसंगमें यह प्रश्न हो सकता है कि बलिके साथ भगवान्‌ने ऐसा क्यों किया? स्पष्ट उत्तर है कि भगवान्‌ने बलिपर कृपा करनेके लिये ऐसा किया। भगवान्‌ने उनपर यह कृपा किसलिये की? दयामय भगवान्‌ने उनपर अपनी कृपा-वृष्टि इसलिये की कि बलिको जो अपने राज्यका, विजयका अहंकार हो गया था। उनका मोह इस प्रकार बढ़ता रहता तो पता नहीं बलि क्या कर बैठते भगवान्‌को भूलकर। बलि कुछ कर न बैठें, बलिका ऐश्वर्य-विजय-मद न रहे, बलि भगवान्‌की ओर लग जायँ, इसलिये भगवान्‌ने बलिपर कृपा की। बलिने स्वयं इसे स्वीकार किया है। यह बात समझमें आनी कठिन है कि बलिका राज्य ले लिया, उनका सर्वनाश कर दिया, इसमें क्या

कृपा की, पर सचमुच भगवान्ने उनपर बड़ी कृपा की।
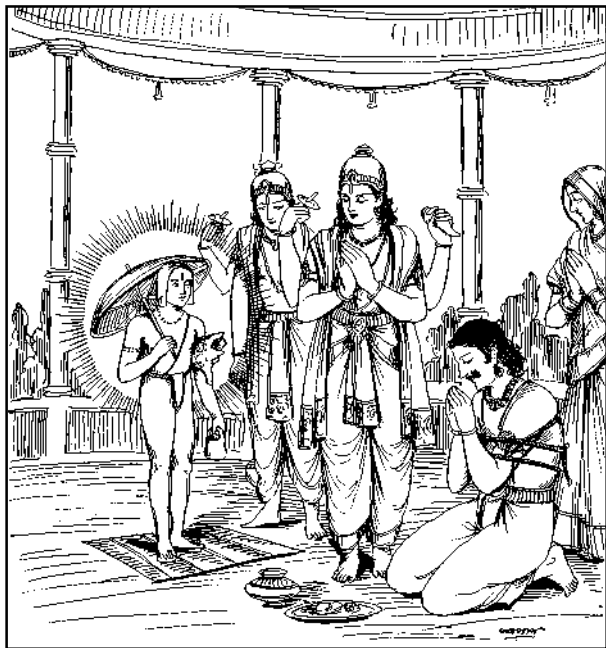
बलिके पितामह भक्तराज प्रह्लादने वहाँ भगवान्की स्तुति करते हुए कहा—'प्रभो! आपने ही बलिको ऐश्वर्यपूर्ण इन्द्रत्व दिया था। आज आपने उसे छीनकर इसपर बड़ी कृपा की है। आपकी कृपासे आज यह आत्माको मोहित करनेवाली राज्यश्रीसे अलग हो गया है। लक्ष्मीके मदसे बड़े-बड़े विद्वान् मोहित हो जाते हैं। ऐसी लक्ष्मीको छीनकर महान् उपकार करनेवाले, समस्त लोकोंके महेश्वर, सबके अन्तर्यामी तथा सबके परम साक्षी आप श्रीनारायणदेवको मैं नमस्कार करता हूँ।' (भागवत ८। २२)

जब भगवान् किसीपर इस प्रकार कृपा करते हैं, तब उसके ऐश्वर्यका विनाश कर देते हैं। एक बार तो वह दुखी हो जाता है। इसी प्रकार जिसके सम्मानकी वृद्धि हो जाती है, भगवान् उसका अपमान करवा देते हैं, लांछित कर देते हैं, जिससे वह मानकी मायासे छूटकर भगवान्की ओर बढ़े। जितनी भी इस प्रकारकी लीलाएँ होती हैं, सबमें भगवान्की कृपा ही हेतु होती है। जो बह रहा है, वह भगवान्को मानेगा ही क्यों? जबतक जगत्में सफलता होती है, तबतक मनुष्य बुद्धिका अभिमान करता ही है और इसलिये भगवान् तथा धर्म दोनों ही उससे दूर हो जाते हैं। वह मोहवश अपने लिये असम्भव और अकर्तव्य कुछ भी नहीं मानता। 'मैं चाहे जो कर सकता हूँ' कौन बोलनेवाला है। किसकी जगत्में शक्ति है, जो मेरी उन्नतिमें बाधा दे सके।' यों वह बकने लगता है, पर भगवान्की कृपासे ऐसी स्थिति उत्पन्न हो जाती है, जो उसकी सारी सफलताको चूर्ण कर देती है। तब वह फिर भगवान्की ओर देखता है। जबतक मनुष्यको संसारका आश्रय मिलता है, तबतक वह भगवान्की ओर ताकता भी नहीं। जबतक उसकी प्रशंसा करनेवाले, उसे आश्रय देनेवाले, उसकी बुरी अवस्थामें भी कुछ भी मित्र, बन्धु-बान्धव रहते हैं, तबतक वह उन्हींकी ओर देखता है। द्रौपदीके चीर-हरणका प्रसंग देखिये। भगवान्की ओर उसने तबतक नहीं देखा, तबतक उसने भगवान्को नहीं पुकारा, जबतक उसे तनिक भी किसीकी आशा बनी रही। वह उनकी ओर ताकती रही। उसने पाण्डवोंकी ओर देखा, द्रोणकी ओर देखा, विदुरकी ओर देखा और देखा पितामह भीष्मकी ओर। उसे आशा थी, ये मुझे बचा लेंगे, किंतु वह जब सब ओरसे निराश हो गयी, उसे कहीं किंचित् भी आश्रय नहीं रह गया, तब उसने

निराश्रयके आश्रय और निर्बलके बल भगवान्का स्मरण किया और भगवान्को आते कितनी देर लगती है। जहाँ अनन्य भावसे करुण आह्वान हुआ कि वे भक्तवत्सल प्रभु दौड़ पड़ते ही हैं।

मानवका कर्तव्य

(ब्रह्मलीन जगद्गुरु शंकराचार्य ज्योतिष्पीठाधीश्वर स्वामी श्रीकृष्णबोधाश्रमजी महाराज)

आप लोगोंका यह परम सौभाग्य है, जो आज आप भगवान्‌के परमप्रिय एवं मंगलमय इस श्रीवृन्दावनधाममें विद्यमान हैं। ऐसे पुनीत स्थलमें एकत्र होकर आप लोगोंको कोई ऐसा परम पवित्र विचार उपस्थित करना चाहिये, जिससे जन्म-जन्मान्तरोंके अनन्तानन्त पुण्यपुंजोंसे प्राप्त यह मानव देह सफल हो जाय। इसके लिये आप लोगोंको भगवान्‌के उस परम पवित्र उपदेशका स्मरण करना चाहिये, जिसे उन्होंने अपने अन्तरंग भक्त अर्जुनसे कहा है—**'अनित्यमसुखं लोकमिमं प्राप्य भजस्व माम्'** अर्थात् हे अर्जुन! अनित्य और असुख इस शरीरको प्राप्तकर मेरा भजन करो। यहाँ भगवान्‌ने शरीरको अनित्य बताया है। जो नित्य अर्थात् सदा न रहे, उसे अनित्य कहा जाता है। ठीक शरीर वैसा ही है, क्या ठिकाना—अभी है और क्षणभरके बाद रहेगा कि नहीं? इसीलिये वेदने सदा 'मृत्युग्रस्त' कहा है **'मघवन्मर्त्य वा इदं शरीरमार्त्त मृत्युना।'** इससे भगवान्‌ने यह सूचित किया है कि—***'काल करे सो आज कर, आज करे सो अब'*** इस न्यायसे बिना किसी विलम्बके आज और अभीसे पुरुषार्थसिद्धि अर्थात् भगवद्भजनके लिये बुद्धिमान्‌को प्रवृत्त हो जाना चाहिये। शरीर असुख है, अर्थात् आध्यात्मिक आदि करोड़ों उपद्रवोंसे युक्त होनेके कारण दुःखस्वरूप है। इससे यह सूचित किया गया है कि जब शरीर स्वस्थ है, तभी मोक्षका प्रयत्न करना चाहिये, पीछे आधि-व्याधिग्रस्त होनेपर क्या हो सकता है? भगवान्‌ने शरीरको 'लोक' कहा है। इसका तात्पर्य है कि जो देखा जाता है अथवा जो आत्मस्वरूपका प्रकाश करता है, वह लोक है। अर्थात् मुक्तिके साधन इस मानवदेहको प्राप्तकर, उसे वस्तुतः क्षणभंगुर और दुर्लभ समझकर तीव्र मोक्षेच्छा और वैराग्यसे मुक्तिप्रद मुझ सोपाधिक या निरुपाधिक परमात्माका भजन करो, श्रद्धा-भक्तिसे मेरा अनुसन्धान करो। यदि तुम्हें निर्विशेष-विषयक ज्ञानका उपदेश प्राप्त है, तो मुझ निर्विशेषका ही अभेद बुद्धिसे भजन करो, अन्यथा सोपाधिकका ही भजन करो, किसी तरह भजन अवश्य करो।

यदि सुखकी भी इच्छा हो तो वास्तविक सुख बिना भगवान्‌के भजनके प्राप्त नहीं हो सकता। वास्तविक सुख किसे कहते हैं? उसका प्रारम्भ कहाँसे होता है? इन बातोंका पता लगानेकी आज तो किसीको चिन्ता नहीं है, सब लोगोंको रोटी और वस्त्रकी चिन्ता व्याकुल किये है। वास्तवमें सुख क्या वस्तु है, इसके जाननेकी इच्छा भी किसीको नहीं होती। आजका मानव संसारमें ही सुख खोजनेके लिये अथक परिश्रम कर रहा है, पर उसे परम सत्यका पता नहीं कि संसारमें सुखका लेशमात्र भी नहीं है। यहाँ सुखका अत्यन्ताभाव है, यहाँ न कभी सुख था, न है और न रहेगा। जहाँ मृत्यु और जन्मकी परम्परा चलती है, वहाँ सुखकी गन्ध कहाँ? विवेकी कहता है कि मैंने संसारमें आकर हजारों माता-पिता और सैकड़ों पुत्र एवं स्त्रियोंका अनुभव किया और जबतक मोक्ष नहीं होता, तबतक कर रहा हूँ तथा करता रहूँगा। तेलीके कोल्हूके बैलकी भाँति यह जीव सदा आवागमनके चक्करमें पड़ा हुआ अनन्त क्लेश-परम्पराओंका शिकार होता रहता है, उससे छुटकारा पानेका उपाय एक ही है, जिसे भगवान् बताते हैं—

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु।
मामेवैष्यसि युक्त्वैवमात्मानं मत्परायणः॥

भगवान्‌ने कहा—अर्जुन! यदि निर्विशेष ज्ञानका अधिकारी अपनेको नहीं समझता, तो तू मेरे सोपाधिक स्वरूपका ही भजन कर। उसका प्रकार यह है कि **'भूतानि विष्णुः'** अर्थात् समस्त भूत मुझ विष्णुका ही स्वरूप हैं, अतः सर्वात्मक मुझमें लग गया है मन जिसका, वह मन्मना है, तुम भी ऐसे मन्मना हो जाओ। अर्थात् सम्पूर्ण जगत्‌को **'वासुदेवः सर्वम्'** इस सिद्धान्तसे मेरा ही रूप समझो। अथवा **'मनो मोक्षे निवेशयेत्'** इस स्मृतिवचनके आधारपर आनन्द एवं मोक्षस्वरूप मुझमें स्थापित कर दिया गया है मन जिसका अर्थात् मोक्षरूप केवल एक ही पुरुषार्थ में आसक्तचित्त हो जाओ। इस प्रकार धर्मफल जो अर्थ-काम हैं, उनमें मन न लगाओ। इसके लिये 'मद्याजी' होनेकी आवश्यकता है, यानी श्रौत-स्मार्त कर्मोंके द्वारा मुझ परमेश्वरका ही भजन करनेके स्वभाववाले बनो। कर्म करते समय अग्नि आदि देवताओंमें भेदबुद्धि न कर उन देवताओंको मेरा ही स्वरूप समझना चाहिये, इस आशयसे कहा—मद्भक्तः, अर्थात् **'ब्रह्मार्पणं ब्रह्म हविः;'** इस न्यायसे हव्य, यजन, यजमान और याग इन सबको मेरा

स्वरूप ही समझकर भजन करनेवाले मेरे भक्त हो जाओ। **'मां नमस्कुरु'**, **'वासुदेवः सर्वम्'** सब कुछ वासुदेवस्वरूप ही है, इस बुद्धिसे मुझे प्रणाम करो। अथवा माता-पिता, गुरु और देवताको मेरा ही स्वरूप समझकर प्रणाम करो।

'मत्परायणः' मैं ही हूँ परमगति जिसकी, यह समझकर सभी अवस्थामें और सदा परमेश्वर ही मेरे सर्वस्व हैं, इस प्रकारका भाव रखकर मेरी शरण आओ। अथवा मेरी प्रसन्नताके लिये ही समस्त लौकिक, वैदिक कर्मोंका अनुष्ठान करो। इस तरह युक्ति अर्थात् कर्मयोगसे मेरी उपासना करके अन्तमें आत्मा अर्थात् परमात्मरूप मुझ परब्रह्मको प्राप्त हो जाओगे।

इस प्रकार भगवान्‌के आज्ञानुसार भगवद्भजन ही मानवका परम कर्तव्य है। इसके विपरीत जो लोग विषयभोगोंमें आसक्त हैं; पुत्र, कलत्र, धन आदिको छोड़ना नहीं चाहते तथा धनी होकर भी प्राणियोंके कल्याणके लिये धन नहीं देते और दरिद्र होकर भी तप नहीं करते; उनके लिये शास्त्र कहते हैं कि इन दोनोंको गलेमें भारी पत्थरका टुकड़ा बाँधकर पानीमें डुबा देना चाहिये—

द्वावेतौ विनिवेष्टव्यौ गले बद्ध्वा दृढां शिलाम्।
धनिनञ्चाप्रदातारं दरिद्रञ्चातपस्विनम्॥

आचार्योंका कहना है कि 'शीघ्रसे शीघ्र जीवके कल्याणका उपाय होना चाहिये। दैहिक, दैविक एवं भौतिक—इन तीन प्रचण्ड ज्वालाओंके कारण जीवकी अत्यन्त शोचनीय दशा हो रही है। फिर भी हम विषयोंसे विरत नहीं होते। हमारी तो ठीक वैसी ही दशा हो रही है, जैसी सर्पके मुखमें पड़े हुए मेढककी। सर्पके मुखमें पड़ा हुआ मेढक अपनी अविलम्ब समाप्त होनेवाली जीवन-लीलाकी ओर ध्यान न देकर पास आये हुए मच्छरोंको लीलनेका प्रयत्न कर रहा है। उसी प्रकार हम स्वयं महाकालके गालमें पड़े हुए हैं, किंतु हमारी सांसारिक दृष्टि नहीं हटती। इससे बढ़कर अज्ञानकी पराकाष्ठा क्या होगी?'

सच्ची बात तो यह है कि जिस शरीरके लिये हम घोरसे घोर अन्याय करनेपर तुले हैं, वह शरीर भी हमारा नहीं है। एक बार महाराज जनकने दरबारमें कहा कि 'क्या इस समय कोई ऐसा महात्मा है, जो चुटकी बजाते ही भगवान्‌का दर्शन करा दे।' उनकी आज्ञाके अनुसार ऐसे ब्रह्मनिष्ठकी खोज होने लगी। अन्तमें महर्षि अष्टावक्रने आकर कहा—'महाराज, दर्शन तो करा दूँ, किंतु इसका मूल्य आपको चुकाना होगा।' महाराजने कहा कि 'इसके बदले मैं सम्पूर्ण राज्य देनेको प्रस्तुत हूँ।' महर्षिने हँसकर कहा—'राजन! यह क्या कह रहे हो, राज्य तुम्हारा कैसे हो गया?' जिस शरीरसे सम्बन्ध जोड़कर राज्यको अपना कहते हो, वह शरीर तुम्हारा नहीं है। यह शरीर किसका है, इस विषयमें बहुत विवाद है, क्योंकि इसपर बहुतोंने अधिकार कर रखा है। अतः यह किसका माना जाय, यह निश्चय करना बड़ा कठिन है। जैसे इस शरीरको माता-पिताका, विवाहिता स्त्रीका, अथवा जिसकी सेवा करके पैसे कमाता है, उस स्वामीका या अन्तमें जला दिये जानेके कारण अग्निका, किंवा जंगलमें फेंक दिये जानेके कारण गीध और कुत्तोंका, अथवा इष्ट-मित्रोंका या अपना ही—किसका माना जाय? अर्थात् यह किसीका भी नहीं, सबके दावे झूठे हैं। अतः देहाभिमान कदापि नहीं करना चाहिये—**'पित्रोः किंस्विन्नु भार्यायाः स्वामिनोऽग्नेः श्वगृद्ध्रयोः। किमात्मनः किं सुहृदामिति यो नावसीयते।'** अतः देहका अभिमान न कर परमात्माके भजनद्वारा आत्मकल्याणका सम्पादन करना चाहिये।

महर्षि दत्तात्रेयने इस शरीरको भी एक गुरु माना है। वे कहते हैं 'जैसे अन्योंसे शिक्षा लेनेके कारण मैंने उन्हें गुरु माना, वैसे ही अपनी देहको भी गुरु मानता हूँ।' गुरुसे वैराग्य और विवेककी शिक्षा मिलती है, देहसे भी इनकी शिक्षा मिलती है। यह देह सत्त्व अर्थात् जन्म और निधन अर्थात् मृत्यु धारण किये रहती है तथा सदा दुःख भोगते रहना ही इसका फल है। अथवा जन्म और मृत्यु ही जिसका सदा दुःखरूप फल है, ऐसी यह देह वैराग्य-कारण होनेसे मेरा गुरु है। किंच आत्मा—अनात्मरूप तत्त्वोंका विवेचन भी इसीके होनेसे मैं कर रहा हूँ; अतः विवेक-प्रदानमें वह मेरा गुरु है। तथापि मैं इसे अपना नहीं मानता। यह पारक्य अर्थात् अन्तमें श्व-शृगालादिभक्ष्य है। इसीलिये मैं भी असंग होकर विचरण कर रहा हूँ।

अन्तमें जनकजीने अष्टावक्रसे प्रार्थना की कि आप जो आज्ञा करें, वही वस्तु मैं इसके बदलेमें दूँ। अष्टावक्रने कहा कि 'यदि ऐसा ही है तो आप मुझे अपना मन दे दीजिये।' जनकजीने यह स्वीकार करके अपना मन उनको प्रदान कर दिया। वे उनका मन लेकर चल दिये और

सालभरतक नहीं लौटे, फलतः जनकजी सालभरतक समाधिमें बैठे रहे और उनको सब कुछ प्राप्त हो गया। अभिप्राय यह है कि सम्पूर्ण अनर्थोंका मूल मन ही है। यदि आप लोग उसे ठीक कर लें तो विषय-वैराग्य होनेमें विलम्ब नहीं। और यह होगा कब? जब यह भगवान्के चरणकमलोंमें लग जायगा। भगवान् मनुने कहा है—'**सर्वभूतेषु चात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि। समं पश्यन्नात्मयाजी स्वाराज्यमधिगच्छति।**' अर्थात् स्थावर-जंगमात्मक सर्वभूतोंमें मैं ही आत्मरूपसे स्थित हूँ तथा सभी भूत मुझ परमात्मामें ही स्थित हैं, इस प्रकार जाननेवाला आत्मयाजी यानी ब्रह्मार्पणबुद्धिसे ज्योतिष्टोमादि यागोंको सम्पन्न करनेवाला स्वराज्य अर्थात् स्वयं प्रकाशित होनेवाला स्वराट्—ब्रह्म, उसके भाव अर्थात् ब्रह्मत्वको प्राप्त हो जाता है। इसलिये मानवको राग-द्वेषके वशमें न होना चाहिये। शास्त्रने जिसको जो आज्ञा दी है, उसके लिये वही धर्म है। उसका ठीक-ठीक पालन करते हुए सन्ध्यावन्दनादि नित्य-नैमित्तिक कर्मोंद्वारा भगवान्को प्रसन्न करना चाहिये। भगवान्ने कहा है—

श्रेयान् स्वधर्मो विगुणः परधर्मात्स्वनुष्ठितात्।
स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः॥

विधिवत् अनुष्ठित परधर्मकी अपेक्षा, विगुण अर्थात् दोषयुक्त या विधिपूर्वक सम्पन्न न हुआ भी जो स्वधर्म है, उसका अनुष्ठान करते हुए मृत्यु भी कल्याणप्रद है, परंतु परधर्म भयप्रद है।

अतः सबको स्वधर्मका अनुष्ठान करना चाहिये। यदि कोई आग्रह करके बैठ जाय और कहे कि 'मैं स्वधर्मका अनुष्ठान कौन कहे, किसी भी कर्मको नहीं करूँगा' तो इससे कोई भी लाभ नहीं हो सकता, कारण! कर्मोंका स्वरूपसे त्याग करना वास्तविक त्याग नहीं, क्योंकि वह बन ही नहीं सकता। इसलिये भगवान्ने कहा है—'**सदृशं चेष्टते स्वस्याः प्रकृतेर्ज्ञानवानपि। प्रकृतिं यान्ति भूतानि निग्रहः किं करिष्यति॥**' नित्य-निरन्तर ब्रह्मनिष्ठासे निर्मूलन कर दिया है सम्पूर्ण वासनाओंकी ग्रन्थिको जिसने, ऐसे ब्रह्मज्ञानी भी प्राणरक्षाके कारणभूत अवशिष्ट अपनी पूर्ववासनाके अनुसार ही आहारादिकी चेष्टा करते हैं। शरीरकी स्थितिमें कारणभूत वासनाके दुर्निवार होनेके कारण वे उसका निग्रह नहीं कर सकते। इस प्रकार ब्रह्मनिष्ठासे प्रकृतिका भी अतिक्रमण करनेवाले जितेन्द्रिय ब्रह्मविद्को भी जब वासनाका अनुवर्तन करना अनिवार्य हो जाता है, तब अशिष्ट, प्रकृत्यधीन मूढ़ प्राणियोंके विषयमें तो कहना ही क्या, इस आशयसे कहा है—'प्रकृतिम्' इत्यादि। सुख-दुःखके अनुभवके लिये अपने-अपने कर्मसे उत्पन्न प्राणी अपनी-अपनी जातिके अनुसार अनेक क्रियाओंकी उत्पत्तिमें हेतुभूत रागद्वेषवाली वासनास्वरूप प्रकृतिको प्राप्त होते और स्व-स्वप्रकृतिके अनुसार रागद्वेषवश नानाविध चेष्टा भी करते हैं। वे प्रकृतिके अधीन होनेके कारण क्षणभर भी चुप नहीं रह सकते। अतः हम कुछ भी कर्म न करेंगे, ऐसा अल्पकालिक इन्द्रियोंका निरोध सर्वथा अकिंचित्कर है। इसलिये मुमुक्षु हो चाहे अमुमुक्षु, कर्म सबको करना ही पड़ेगा।

मुमुक्षुको इतना ध्यान अवश्य रखना चाहिये कि श्रोत्रादि सभी इन्द्रियोंको अपने-अपने शब्दादि विषयोंमें रागद्वेष नियमतः रहता है। मुमुक्षुको उसके अधीन नहीं होना चाहिये। यदि कहा जाय कि इन्द्रियोंका विषयोंमें राग अथवा द्वेष रहे, इससे अपनी क्या हानि? तो ऐसा कहना ठीक नहीं, कारण वे ही राग-द्वेष इस मुमुक्षुमार्गमें मार्गस्थित चोरोंकी तरह परिपन्थी अर्थात् प्रतिबन्धक होते हैं, वे मोक्षसाधनका आश्रय करनेवाले बेचारे मुमुक्षुको अपने वशमें कर विषयरूपी महा-अरण्यमें ले जाकर उसीमें उसे सदा भ्रमण कराया करते हैं। फिर उसे विषयारण्यसे निकलना अत्यन्त दुष्कर हो जाता है। यही बात भगवान्ने कही है—

इन्द्रियस्येन्द्रियस्यार्थे रागद्वेषौ व्यवस्थितौ।
तयोर्न वशमागच्छेत्तौ ह्यस्य परिपन्थिनौ॥

इस प्रकार भगवान्की आज्ञाका पालन करते हुए उन्हींके पादपद्मोंमें मन-मिलिन्दको लगाकर ऐसा नियमित जीवन व्यतीत करना चाहिये; जिससे—'**पुनरपि जननं पुनरपि मरणं पुनरपि जननीजठरे शयनम्**'—बार-बार जनमना, बार-बार मरना और बार-बार माताके गर्भमें शयन करना—इन महाक्लेशोंसे सदाके लिये छुटकारा मिले। इसीलिये भक्त लोग सदा कहा करते हैं—'**भज गोविन्दं भज गोविन्दं गोविन्दं भज मूढमते।**' मानव-जीवनका यही सर्वोत्तम कर्तव्य है।

साधकोंके प्रति—

एक निश्चयकी महिमा

(ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)

भोग और ऐश्वर्यमें आसक्त रहनेवाले पुरुषोंका ऐसा निश्चय भी नहीं होता कि हमें परमात्माकी प्राप्ति करनी है, फिर उन्हें तत्त्वकी प्राप्ति होना तो बहुत दूरकी बात है—

भोगैश्वर्यप्रसक्तानां तयापहृतचेतसाम्।
व्यवसायात्मिका बुद्धिः समाधौ न विधीयते॥

(गीता २। ४४)

यत्न करते हुए भी वे इस परमात्मतत्त्वको नहीं जान सकते—'**यतन्तोऽप्यकृतात्मानो नैनं पश्यन्त्यचेतसः॥**' (गीता १५। ११) कबतक? जबतक कि भोग और संग्रहमें आसक्ति है अर्थात् जबतक सांसारिक पदार्थोंसे सुख लेते रहें और रुपयोंका संग्रह बना रहे—ये भावनाएँ भीतरमें बनी हैं, तबतक परमात्म-तत्त्वको स्पर्श नहीं कर सकते और परमात्मतत्त्वकी प्राप्ति ही करना है—ऐसा उनका निश्चय भी नहीं हो सकता। कारण कि उनके हृदयमें परमात्माके स्थानपर धन और भोग आकर बैठ गये हैं। 'सुख भोगना है और सुख-भोगके लिये संग्रहकी आवश्यकता है'—यह संग्रह और भोगकी रुचि बहुत घातक है। धनका उपयोग अपने और औरोंके निर्वाहके लिये खर्च करनेमें है और धनका संग्रह तो केवल पतन करनेवाला है। संग्रह करनेकी जो रुचि है कि मेरे पास इतनी वस्तुएँ हो जायँ, इतने रुपये हो जायँ—यह बहुत ही बाधक है।

रुपयों और पदार्थोंके संग्रहकी रुचिकी तो बात ही क्या है। पढ़ाई करके ज्ञान अधिक संग्रह कर लूँ, बहुत पढ़ाई कर लूँ, बहुत शास्त्र पढ़ लूँ, इस प्रकार पढ़ाईके संग्रहकी भावना जबतक रहेगी, तबतक मनुष्य परमात्म-तत्त्वको जान नहीं सकता और उसकी प्राप्तिके विषयमें निश्चय भी नहीं कर सकता। जो अपना कल्याण चाहता है, उसकी बुद्धि एक ही होती है, उसका एक ही निश्चय होता है कि 'हमें तो परमात्मतत्त्वको ही प्राप्त करना है और यही हमारे जीवनका ध्येय है।'

जिनका ऐसा एक निश्चय नहीं है, जो संसारके भोग और संग्रहमें आसक्त हैं, उनकी बहुत बुद्धियाँ होती हैं और वे बुद्धियाँ भी अनन्त शाखाओंवाली होती हैं अर्थात् उनकी बुद्धियाँ भी अनन्त होती हैं और एक-एक बुद्धिकी शाखा भी अनन्त होती है। जैसे—पुत्र मिले, यह एक बुद्धि हुई और पुत्र-प्राप्तिके लिये किस औषधका सेवन करें। किस मन्त्रका अथवा किस जप आदिका अनुष्ठान करें अथवा किस संतका आशीर्वाद लें अथवा और कहाँकी यात्रा करें, जिससे पुत्रकी प्राप्ति हो। तात्पर्य यह है कि पुत्रकी प्राप्ति, यह तो एक बुद्धि हुई और उसकी प्राप्तिके अनेक उपाय उस बुद्धिकी अनन्त शाखाएँ हुईं। इसी तरह धनकी प्राप्ति एक बुद्धि हुई और उसकी प्राप्तिके लिये व्यापार करना, नौकरी करना, चोरी करना, डाका डालना, ठगाई करना, धोखा देना आदि उस बुद्धिकी अनन्त शाखाएँ हुईं। ऐसे पुरुषोंको परमात्माकी प्राप्तिका निश्चय नहीं हो सकता।

गीताजीमें भगवान्ने परमात्माके प्राप्ति-विषयक एक निश्चयकी बड़ी भारी महिमा गायी है। इतनी विलक्षण महिमा बतायी है कि जिसकी महिमा कही नहीं जा सकती। '**अपि चेत्सुदुराचारः**'—सांगोपांग दुराचारी, जिसके दुराचरणमें कोई कमी नहीं है। जो झूठ, कपट, बेईमानी, अभक्ष्य-भक्षण, वेश्यागमन, जूआ खेलना, चोरी, व्यभिचार आदि जितने दुराचार सम्भव हैं, सब करनेवाला है। ऐसा पुरुष भी यदि परमात्माकी ओर ही चलनेका निश्चय कर ले तो भगवान् कहते हैं कि उसको साधु ही मानना चाहिये—'**साधुरेव स मन्तव्यः**'।

ऐसे दुराचारीको साधु क्यों मानना चाहिये? भगवान् आज्ञा देते हैं कि उसको साधु ही मानना चाहिये; क्योंकि '**सम्यग्व्यवसितो हि सः**' (गीता ९। ३०) 'उसने परमात्माकी प्राप्तिका एक निश्चय कर लिया है।' अब उस निश्चयके अनुसार उसका जीवन धार्मिक हो जायगा। उसका एक लक्ष्य बन गया, एक ध्येय बन गया कि अब कुछ भी हो जाय, एक भगवत्प्राप्ति ही करनी है। ऐसे पुरुषको '**सम्यग्व्यवसितो हि सः**' (जिसने

अपने जीवनका लक्ष्य भलीभाँति निश्चित कर लिया है) कहते हैं।

एक प्रश्न उठता है कि भोग और ऐश्वर्यके संग्रहमें जो आसक्त हैं, उनका तो परमात्माकी प्राप्तिका निश्चय नहीं हो सकता और पापी-से-पापी भी ऐसा निश्चय कर सकता है—इन दोनों बातोंमें विरोध प्रतीत होता है। बात ठीक है। इसीलिये '**अपि चेत्**' पद श्लोकमें आये हैं। साधारणतया पापीलोगोंकी भजनमें रुचि नहीं होती—'**न मां दुष्कृतिनो मूढाः प्रपद्यन्ते नराधमाः**' (गीता ७। १५)। पापी लोग मेरा भजन नहीं करते, यह सामान्य बात है; परंतु यदि पापी भी भजनका निश्चय कर ले, तो इस निश्चयके आधारपर उसे साधु ही मानना चाहिये। भगवान्ने ऐसा कहा है।

बात यह है कि पाप करनेकी भावना रहते हुए ऐसा निश्चय नहीं होता, यह ठीक है, परंतु जीवमात्र भगवान्का अंश है और तत्त्वतः निर्दोष है। संसारकी आसक्तिके कारण उसमें दोष आये हैं। यदि उसके मनमें पापोंसे घृणा होकर किसी तरह यह जँच जाय कि भगवान्का भजन ही श्रेष्ठ है, तो वह बहुत शीघ्र धर्मात्मा बन जाता है।

मनुष्यमें जहाँ संसारकी कामना है, वहीं उसमें भगवान्की ओर चलनेकी रुचि भी है। यदि भगवान्को प्राप्त करनेकी रुचि जम जाय, तो फिर कामना नष्ट होकर भगवत्प्राप्तिमें देरी नहीं लग सकती। यह मानवके विवेककी महिमा है। यह सत्य है कि प्रायः पापियोंका ऐसा निश्चय हुआ नहीं करता; परंतु ऐसा नहीं है कि पापी ऐसा निश्चय नहीं कर सकते। महान्-से-महान् पापी अपना उद्धार कर सकता है। जबतक मृत्युकाल नहीं आया है, तबतक इस मनुष्यमें यह शक्ति है कि वह भगवत्प्राप्तिका निश्चय कर सकता है; परंतु भोगोंका, धनका महत्त्व हृदयमें रहते हुए परमात्माकी प्राप्तिका निश्चय नहीं कर सकता।

यहाँ ध्यान देनेकी बात यह है कि किये हुए पाप मनुष्यको भगवान्की ओर जानेमें नहीं रोक रहे हैं। इसी तरह सांसारिक पदार्थ भी भगवान्की ओर जानेमें नहीं रोक रहे हैं; परंतु वर्तमानमें भोगोंका जो महत्त्व अन्तःकरणमें बैठा हुआ है, वह बाधा दे रहा है। भोग उतना नहीं अटकाते, जितना भोगोंका महत्त्व अटकाता है। अटकानेमें आपकी रुचि—नीयत प्रधान है। पापीने पाप बहुत किये, परंतु अब उसकी रुचि—नीयत पाप करनेकी नहीं रही। अब उसने निश्चय कर लिया कि एक परमात्माकी प्राप्ति ही करनी है। इसलिये उसे 'धर्मात्मा' बनते देर नहीं लगती, परमात्माकी प्राप्ति होनेमें देरी नहीं लगती; क्योंकि मनुष्य स्वयं परमात्माका अंश है।

यदि भोग और संग्रहकी रुचिको रखते हुए परमात्माकी प्राप्ति करना चाहें तो परमात्माकी प्राप्ति तो दूर रही, उनकी प्राप्तिका एक निश्चय भी नहीं हो सकता। कारण कि जहाँ भोगोंकी रुचि है, वहाँ परमात्माकी रुचि है। रुचि जबतक भोग-संग्रहमें है, मान, बड़ाई, आराममें है, तबतक कोई भी परमात्मामें नहीं लग सकता; क्योंकि उसका चित्त भोगोंकी रुचिद्वारा हरा गया। जो शक्ति थी, वह भोग और ऐश्वर्यमें लग गयी। भोग और संग्रहमें मनुष्यको मिलेगा कुछ नहीं, प्रत्युत वह परमात्माकी प्राप्तिसे वंचित रह जायगा। धोखा हो जायगा धोखा! मान-बड़ाई कितने दिन रहेगी? मान-बड़ाई मिलकर भी क्या निहाल करेगी? भोग कितने दिन भोगेंगे? संग्रह कितने दिन रहेगा? यहाँ खूब धन इकट्ठा किया, पर यदि आज आयु समाप्त हो गयी, तो आज ही मर जाओगे, धन यहीं रह जायगा और परमात्माकी प्राप्तिसे वंचित रह जाओगे।

इसलिये भगवान्के कहनेका अभिप्राय यह है कि

यदि परमात्माकी प्राप्ति वास्तवमें चाहते हो, तो भोग और संग्रहको महत्त्व मत दो। आजकल तो खर्चके लिये ही रुपयोंका महत्त्व नहीं, अपितु उनकी संख्याको महत्त्व दे रहे हैं। हम लखपति हो जायँ, हमारे पास इतना संग्रह हो जाय। पासमें रुपया है, पर उसे खानेमें खर्च नहीं कर सकते, अच्छे काममें खर्च नहीं कर सकते। केवल एक धुन धन जोड़नेकी लगी हुई है—'संख्या कम न हो जाय।' मूलधनमें कम-से-कम एक लाख रुपया तो इस साल जमा हो जाय, ऐसी रुचि रहती है। लड़कोंको उपदेश देते हैं कि 'रुपया जोड़ो! जोड़ो नहीं, तो कमाओ, उतना खाओ! मूल पूँजी खर्च करते हो? तुममें बुद्धि नहीं है।' मूल खर्च करते दु:ख होता है तो मूलमें क्या तूली लगाओगे? खर्च नहीं करोगे तो क्या करोगे?

सज्जनो! यह संग्रहकी वृत्ति नरकोंमें ले जानेवाली है। माँ-बाप बूढ़े हो जाते हैं तो वे लड़कोंको समझाते हैं कि 'तुमलोग बुद्धिहीन हो। मूलधन खर्च करते हो? इस मूलधनको मत छेड़ो। जितना कमाओ उतना खर्च कर लो, पर मूलधन कम मत करो।' ऐसे पुरुष परमात्माकी प्राप्ति कर ही नहीं सकते। साधु हो, गृहस्थ हो, पढ़ा-लिखा हो, मूर्ख हो, पण्डित हो, भाई हो, चाहे बहन हो, जबतक संग्रह करनेकी तथा संग्रह बना रहे—यह रुचि रहेगी, तबतक वे परमात्माकी प्राप्तिके मार्गमें नहीं चल सकते। यदि आपके भीतर और संग्रहकी रुचि नहीं है तो आपके पास चाहे लाखों-करोड़ों रुपये हैं, पर वे आपको अटका नहीं सकते। बैंकोंमें बहुत धन पड़ा है, शहरमें बहुत मकान हैं; पर वे हमें नहीं अटकाते। क्यों नहीं अटकाते? क्योंकि उनमें हमारी ममता नहीं है तथा उनकी प्राप्तिकी इच्छा नहीं है। यदि उन्हें प्राप्त करनेकी इच्छा हो जायगी, तो उनमें हम फँस जायँगे।

हमारा बन्धन कहाँ है? जितने धनमें हमने ममता की है, वही तो बाँधनेवाला है। संसारमात्रसे हमारी मुक्ति स्वत: है, दस-बीस आदमियोंको जिन्हें हमने अपना मान रखा है, वही बन्धन है। लाख-दो लाख रुपयोंको हमने अपना मान रखा है, मकानको अपना मान रखा है, वही फँसावट है। हमने जिन्हें अपना नहीं माना है, वे मनुष्य मर जायँ, उन्हें कुछ भी हो जाय, तो हमारे चित्तपर कुछ असर नहीं पड़ता। जिन मकानोंको हमने अपना नहीं माना, वे सब-के-सब धराशायी हो जायँ तो हमपर कोई असर नहीं पड़ता। जिन रुपयोंको हमने अपना नहीं माना, वे चले जायँ, लाखों-करोड़ोंकी उथल-पुथल हो जाय, तो हमपर कोई असर नहीं पड़ता; क्योंकि उनमें हम बँधे हुए नहीं हैं। सारे संसारसे आपको बन्धन नहीं है। आपने इन थोड़ोंको जो अपना मान रखा है, यदि इनकी ममताका भी आप त्याग कर दें, तो निहाल हो जायँगे। अधिक बन्धन नहीं है। अधिक-सा बन्धन तो छूटा हुआ है ही अर्थात् जिनमें आपकी ममता नहीं, उनसे आप मुक्त हैं ही। जिनमें आप ममता करते हैं, उनमें आप बँध जाते हैं।

मनुष्योंमें ऐसी ही चाल है कि वे अधिक व्यक्तियोंमें, पदार्थोंमें ममता करना चाहते हैं। वक्ता भी चाहता है कि श्रोता अधिक आ जायँ। यदि ऐसी इच्छा नहीं रखेंगे तो फँसेंगे कैसे? वे भी फँसनेकी तैयारी करते रहते हैं। इसी प्रकार अन्य लोग भी अपने-अपने क्षेत्रमें अधिक-से-अधिक भोग मिल जाय—यह चाहते रहते हैं, पर अधिक चाहनेसे मिलता नहीं। यदि मिल जाय तो टिकेगा नहीं और वह यदि टिकेगा भी, तो आप नहीं टिक सकेंगे। इस तरह आप फँसे ही रहेंगे, मरनेके बाद भी आप छूट सकेंगे नहीं।

मैं-मैं बुरी बलाय है, सको तो निकसो भाग।
कब तक निबाहे रामजी, रुई लपेटी आग॥

जैसे रुईमें लपेटी आग कितने दिन ठहरेगी? वह तो जलायेगी ही। ऐसे ही जिन पदार्थोंमें 'मैं और मेरापन' करते हो, वे कितने दिन ठहरेंगे? आप सम्बन्ध रखेंगे तो बँध ही जायँगे। इसलिये प्रत्येक भाई-बहनके लिये बहुत आवश्यक है कि वे संसारके भोगोंको और उनके संग्रहकी इच्छाको भीतरसे त्याग दें।

भीतरसे पदार्थोंकी इच्छा छोड़ देनेपर पदार्थ प्रारब्धानुसार स्वत: आते हैं। चाहनासे पदार्थोंके मिलनेमें आड़ लगती है। अपनी चाहनाका त्याग होनेसे आपकी

आवश्यकता सर्वत्र फैलती है। लोगोंके मनमें आपकी आवश्यकताओंकी पूर्तिके लिये स्वत: प्रेरणा होती है। हमारे चाहना रखते हुए हमारी इच्छा हममें सीमित हो जाती है और मिलनेमें आड़ लग जाती है। चाहना रखते हुए जब हमें धन, मकान मिलता है, तब हम अपनेको सफल मानते हैं; चाहनाका त्याग कर देनेपर वस्तुएँ खुली आयेंगी और हमारी सेवामें लगकर सफल होंगी।

परमात्म-तत्त्वमें नित्य-निरन्तर स्थिति चाहते हैं तो उत्पत्ति-विनाशवाली वस्तुओंका आकर्षण सर्वथा मिटाइये। उत्पन्न और नष्ट होनेवाली वस्तुओंमें फँसे रहेंगे, तो अनुत्पन्न तत्त्व नहीं मिलेगा। सदा साथमें रहता हुआ परमात्मा नहीं मिलेगा। उससे वंचित रह जायँगे। भोग और संग्रहकी रुचि रखेंगे तो परमात्मासे वंचित रहनेके सिवाय अन्य कुछ लाभ नहीं होगा। धन भी नहीं मिलेगा। यदि मिलेगा भी तो रहेगा नहीं। न भोग मिलेंगे। यदि मिलेंगे तो वे रहेंगे नहीं और न आप रहेंगे। केवल आपको जन्म-मरणमें डालनेवाला, नरकोंमें ले जानेवाला बन्धन रहेगा। इसलिये भोग और संग्रहकी इच्छा सर्वथा त्याग दें।

आप अपने पास धन रखें, इसमें मेरा विरोध नहीं है, पर आप जो उसके गुलाम बनते हैं, उससे मेरा विरोध है। न्याययुक्त कमाते हुए लाख रुपया आ जाय तो मौज, लाख चला जाय तो मौज! लाखों-करोड़ों आ जायँ तो वही प्रसन्नता; सब-के-सब चले जायँ तो भी आपको वही प्रसन्नता। तब तो आप वास्तवमें धनपति हैं। पर धन आनेसे तो हो जायँ प्रसन्न और चले जानेसे रोने लग जायँ तो आप धनदास हुए, धनपति नहीं हुए। रुपये जानेसे रोना-ही-रोना आ रहा है—हमारा मालिक (धन) चला गया, अब कैसे रहें? उससे पूछा जाय कि क्या चला गया भाई? अरे, जिसने कमाया था, वह तो मौजूद है? परंतु बात बुद्धिमें नहीं आती; क्योंकि उसने धनको अपना इष्टदेव मान रखा है। जिन्होंने धनको इष्टदेव मान रखा है, उन्हें झूठ, कपट, बेईमानी, धोखेबाजीका आश्रय लेना पड़ता है। उनके मनमें दृढ़तासे यह भाव जम जाता है कि झूठ, कपट, जालसाजी, बेईमानी, ठगी, ब्लैकमार्केट किये बिना पैसे पैदा नहीं हो सकते। जैसे भगवान्‌का भक्त सद्‌गुणोंका सहारा लेता है, ऐसे ही धनके भक्तको झूठ, कपट, छल, ठगी आदि दुर्गुणोंका सहारा लेना ही पड़ता है। कोई कितनी सच्ची बात कहे, पर उन्हें यही बात जँची हुई है कि झूठ, कपट, चोरी बिना पैसा पैदा नहीं हो सकता। ब्रह्माजीकी भी शक्ति नहीं, जो उन्हें समझा दें। कोई उन्हें ठीक बात समझाये तो उसे वे मूर्ख समझते हैं कि आजके जमानेमें झूठ, कपट, बेईमानी, अन्यायके बिना काम कैसे चल सकता है? यह दृढ़ धारणा उनके मनमें बैठ गयी है। इसलिये यदि आपको परमात्मतत्त्वकी प्राप्ति करनी है तो धन आदि पदार्थोंके भोग और संग्रहकी आशाका सर्वथा त्याग करना ही पड़ेगा।

भोग और संग्रहकी रुचि रखते हुए तत्त्वकी प्राप्ति, उसकी अनुभूति सम्भव नहीं। आजकल भगवत्तत्त्वकी बातें शीघ्र समझमें न आनेका मुख्य कारण यही है कि 'भोग और संग्रहकी रुचि छोड़ते नहीं और सच्चे हृदयसे इस रुचिको छोड़ना चाहते नहीं। इस रुचिको त्यागे बिना परमात्मतत्त्वकी बातें समझमें आती नहीं।'

नारायण! नारायण! नारायण!

नमामि नारायणपादपङ्कजं करोमि नारायणपूजनं सदा। वदामि नारायणनाम निर्मलं स्मरामि नारायणतत्त्वमव्ययम्॥
नारायणेति मन्त्रोऽस्ति वागस्ति वशवर्तिनी। तथापि नरके घोरे पतन्तीत्येतदद्भुतम्॥

मैं नारायणके चरणारविन्दोंको नमस्कार करता हूँ, नारायणहीकी नित्य पूजा करता हूँ, नारायणके निर्मल नामका उच्चारण करता हूँ और नारायणके अव्यय तत्त्वका स्मरण करता हूँ। नारायणरूप मन्त्रके रहते हुए और वाणीके स्ववश रहते हुए भी लोग नरकमें गिरते हैं—यह बड़ा आश्चर्य है! [**श्रीपाण्डवगीता**]

'राम जनम के हेतु अनेका'

(डॉ० श्रीरमेश मंगलजी वाजपेयी)

पर-ब्रह्मकी व्यापक गति है। उसका लीला-विलास अगम्य और अकथ है। सत्य-धर्म और लोक-मंगलकी सर्वोपरि भावना उसका स्वभाव तथा अवतारोंके रूपमें अधर्मका नाश एवं सत्य-धर्मकी प्रतिष्ठा हो जाना, उसका परम प्रभाव है। उस ब्रह्मका विष्णु-स्वरूप अत्यन्त मोहक, सर्वव्यापी और वैष्णव अवतारोंसे परिपूर्ण है। श्रीरामके रूपमें उसका मनुजावतार मर्यादाकी पराकाष्ठा है। श्रीराम शील, सौन्दर्य और शक्तिके निधान हैं। वे अत्यन्त करुणासागर तथा निर्बलों-असहायोंके सम्बल हैं। विभिन्न हेतुओंसे उनका प्राकट्य कल्प-कल्पमें होता है।

धर्मके क्षय और अधर्मकी वृद्धि होनेपर वेदोंकी मर्यादाएँ सुरक्षित करनेके लिये (धर्मसंस्थापनार्थ) सत्पुरुषोंकी रक्षा और असुरोंके विनाशहेतु परमेश्वरका अवतार होता है।

श्रीहरिके प्रत्येक युगमें होनेवाले 'रामावतार' का भी यही मूल आधार है। पुनरपि—

'हरि अवतार हेतु जेहि होई। इदमित्थं कहि जाइ न सोई॥'

अर्थात् श्रीरामचरितमानसके अनुसार—'हरिका अवतार जिस कारणसे होता है, वह कारण 'बस यही है', ऐसा नहीं कहा जा सकता।' श्रीहरिके रामावतारमें ऐसे अनेक ज्ञात और अज्ञात कारण हैं, जो विभिन्न कल्पों-युगोंमें श्रीरामजन्मके हेतु स्थिर किये जाते हैं। कहा भी है—

राम जनम के हेतु अनेका। परम बिचित्र एक तें एका॥
द्वारपाल हरि के प्रिय दोऊ। जय अरु बिजय जान सब कोऊ॥
बिप्र श्राप तें दूनउ भाई। तामस असुर देह तिन्ह पाई॥
भए निसाचर जाइ तेइ महाबीर बलवान।
कुंभकरन रावन सुभट सुर बिजई जग जान॥

(रा०च०मा० १।१२२।२, ४-५, १।१२२)

अर्थात् 'श्रीरामचन्द्रजीके जन्म लेनेके अनेक कारण हैं, जो एकसे बढ़कर एक विचित्र हैं।' यथा—श्रीहरिके जय और विजय दो प्यारे द्वारपालोंको सभी जानते हैं। उन दोनों भाइयोंने ब्राह्मण (सनकादि)-के शापसे असुरोंका तामसी शरीर पाया। एक जन्ममें—वे ही जाकर देवताओंको जीतनेवाले रावण और कुम्भकर्ण नामक बड़े बलवान् और महावीर राक्षस (निशाचर) हुए, जिन्हें सारा जगत् जानता है। जिनके संहारहेतु श्रीरामचन्द्रजीका जन्म हुआ।

एक कल्पमें पराक्रमी जलन्धर नामक दैत्यसे सारे देवता युद्धमें हार गये। उन्हें दुखी देखकर शिवजीने उसके साथ बड़ा घोर युद्ध किया। किंतु वह महाबली दैत्य मारे नहीं मरता था। उस दैत्यराजकी स्त्री (वृन्दा) परम सती (बड़ी ही पतिव्रता) थी, जिसके कारण त्रिपुरासुर-जैसे अजेय शत्रुका विनाश करनेवाले शिवजी भी उस दैत्यको नहीं जीत सके। तब प्रभु (श्रीहरि विष्णु)-ने छलसे उस स्त्री (सती वृन्दा)-का व्रत भंगकर देवताओंका कार्य किया। जब उस स्त्रीने यह भेद जाना, तब उसने क्रोध करके भगवान्को शाप दिया। तब लीलासागर कृपालु हरिने उस स्त्री (सती वृन्दा)-के शापको प्रमाणरूपसे स्वीकार किया। वही जलन्धर उस कल्पमें रावण हुआ, जिसे श्रीरामने युद्धमें मारकर परमपद दिया। यथा—

एक कलप सुर देखि दुखारे। समर जलंधर सन सब हारे॥
संभु कीन्ह संग्राम अपारा। दनुज महाबल मरइ न मारा॥
परम सती असुराधिप नारी। तेहिं बल ताहि न जितहिं पुरारी॥
छल करि टारेउ तासु ब्रत प्रभु सुर कारज कीन्ह।
जब तेहि जानेउ मरम तब श्राप कोप करि दीन्ह॥

(रा०च०मा० १।१२३।५—७, १।१२३)

तासु श्राप हरि दीन्ह प्रमाना। कौतुकनिधि कृपाल भगवाना॥
तहाँ जलंधर रावन भयऊ। रन हति राम परम पद दयऊ॥

(रा०च०मा० १।१२४।१-२)

एक कल्पमें देवर्षि नारदजीके शापको श्रीहरिने शिरोधार्यकर श्रीरामके रूपमें मनुजावतार लिया—

नारद श्राप दीन्ह एक बारा। कलप एक तेहि लगि अवतारा॥

(रा०च०मा० १।१२४।५)

नारदके अभिमान और मोहसे जुड़ा यह प्रसंग

अत्यन्त रोचक है। इसमें साक्षीरूप शिवजीके दो गणोंको भी शाप मिलता है और श्रीहरि विष्णुको भी नारदजी शाप देते हैं। उक्त तथ्यकी मानसोक्त काव्य-पंक्तियाँ हैं—

दुलहिनि लै गे लच्छिनिवासा। नृप समाज सब भयउ निरासा॥
मुनि अति बिकल मोहँ मति नाठी। मनि गिरि गई छूटि जनु गाँठी॥
तब हर गन बोले मुसुकाई। निज मुख मुकुर बिलोकहु जाई॥
अस कहि दोउ भागे भय भारी। बदन दीख मुनि बारि निहारी॥
वेषु बिलोकि क्रोध अति बाढ़ा। तिन्हहि सराप दीन्ह अति गाढ़ा॥
होउ निसाचर जाइ तुम्ह, कपटी पापी दोउ।
हँसेहु हमहि सो लेहु फल, बहुरि हँसेहु मुनि कोउ॥

(रा०च०मा० १।१३५।४—८, १।१३५)

अर्थात् लक्ष्मीनिवास श्रीहरि व्याहकर दुलहिनिको ले गये। असफल राजमंडली निराश हो गयी। मोहके कारण नारदमुनिकी बुद्धि नष्ट हो गयी थी, इससे वे राजकुमारीको गयी देख बहुत ही व्याकुल हो गये। मानो गाँठसे छूटकर मणि गिर गयी हो। तब शिवजीके गणोंने मुसकराकर कहा—'हे मुनि! जाकर दर्पणमें अपना मुख तो देखिये।'—ऐसा कहकर वे दोनों बहुत भयभीत होकर भागे। मुनिने जलमें झाँककर अपना मुँह देखा। अपना रूप देखकर उनका क्रोध बहुत बढ़ गया। उन्होंने शिवजीके उन गणोंको अत्यन्त कठोर शाप दिया—'तुम दोनों कपटी-पापी जाकर निशाचर हो जाओ। तुमने हमारी हँसी की, उसका फल चखो। फिर किसी मुनिकी हँसी उड़ाना।' अनन्तर वे शिवगण देवर्षि नारदसे शाप-अनुग्रहहेतु प्रार्थना करते हैं, तो नारदजी द्रवित होकर उनसे कहते हैं—

निसिचर जाइ होहु तुम्ह दोऊ। बैभव बिपुल तेज बल होऊ॥
भुजबल बिस्व जितब तुम्ह जहिआ। धरिहहिं बिष्नु मनुज तनु तहिआ॥
समर मरन हरि हाथ तुम्हारा। होइहहु मुकुत न पुनि संसारा॥

(रा०च०मा० १३९।५—७)

अर्थात् 'तुम दोनों जाकर राक्षस (रावण-कुम्भकर्ण) होओ। तुम्हें महान् ऐश्वर्य, तेज और बलकी प्राप्ति हो। तुम अपनी भुजाओंके बलसे जब सारे विश्वको जीत लोगे, तब भगवान् विष्णु मनुष्यका शरीर (श्रीरामावतार) धारण करेंगे। युद्धमें श्रीहरिके हाथसे तुम्हारी मृत्यु होगी। जिससे तुम मुक्त हो जाओगे और फिर संसारमें जन्म नहीं लोगे।' देवर्षि नारदके उक्त वचन, उनके द्वारा श्रीहरिको दिये गये शापके क्रममें हैं। यथा—

बंचेहु मोहि जवनि धरि देहा। सोइ तनु धरहु श्राप मम एहा॥
कपि आकृति तुम्ह कीन्हि हमारी। करिहहिं कीस सहाय तुम्हारी॥
मम अपकार कीन्ह तुम्ह भारी। नारि बिरहँ तुम्ह होब दुखारी॥

(रा०च०मा० १।१३७।७-८)

अर्थात् नारदजी श्रीहरिसे कहते हैं—'जिस शरीरको धारण करके तुमने मुझे ठगा है, तुम भी वही शरीर धारण करो, यह मेरा शाप है। तुमने हमारा रूप बन्दर-का-सा बना दिया था, इससे बन्दर ही तुम्हारी सहायता करेंगे। (मैं जिस स्त्रीको चाहता था, उससे मेरा वियोग कराके) तुमने मेरा बड़ा अहित किया है। इससे तुम भी स्त्रीके वियोगमें दुखी होगे।' इस प्रकार एक कल्पके त्रेतायुगकी श्रीरामकथा इसीके अनुरूप है। उस कल्पमें देवर्षि नारदका शाप श्रीरामजन्मका हेतु बनता है।

श्रीरामके अवतार लेनेका एक अन्य कारण बताते हुए महर्षि याज्ञवल्क्यजी भरद्वाजमुनिसे चक्रवर्ती राजा प्रतापभानुकी कथा सुनाते हैं। जिन्हें कपट-मुनिने छला था और उसी क्रममें ब्राह्मणोंने राजाको शाप देते हुए कहा था—'अरे मूर्ख राजा! तू परिवारसहित राक्षस हो जा।' याज्ञवल्क्यजी कहते हैं—

काल पाइ मुनि सुनु सोइ राजा। भयउ निसाचर सहित समाजा॥
दस सिर ताहि बीस भुजदंडा। रावन नाम बीर बरिबंडा॥
भूप अनुज अरिमर्दन नामा। भयउ सो कुंभकरन बलधामा॥
सचिव जो रहा धरमरुचि जासू। भयउ बिमात्र बंधु लघु तासू॥
नाम बिभीषन जेहि जग जाना। बिष्नुभगत बिग्यान निधाना॥
रहे जे सुत सेवक नृप केरे। भए निसाचर घोर घनेरे॥

(रा०च०मा० १।१७६।१—६)

अर्थात् 'हे भरद्वाज मुनि! सुनो, समय पाकर वही राजा प्रतापभानु परिवारसहित रावण नामक राक्षस हुआ। उसके दस सिर और बीस भुजाएँ थीं और वह बड़ा ही प्रचण्ड शूरवीर था। अरिमर्दन नामक जो राजाका छोटा भाई था, वह बलका धाम कुम्भकर्ण हुआ। उसका जो

मंत्री था, जिसका नाम धर्मरुचि था, वह रावणका सौतेला छोटा भाई हुआ। उसका विभीषण नाम था, जिसे सारा जगत् जानता है। वह विष्णु-भक्त और ज्ञान-विज्ञानका भण्डार था और जो राजाके पुत्र और सेवक थे, वे सभी बड़े भयानक राक्षस हुए।' इन राक्षसोंके अत्याचारोंसे मुक्ति दिलानेहेतु उस कल्पमें श्रीरामावतार हुआ।

वाल्मीकिरामायणमें एक प्रसंग है, जिसमें देवोंके संरक्षणार्थ श्रीहरिको एक कठोर निर्णय लेना पड़ता है और जिसके कारण महर्षि भृगु श्रीहरिको शाप देते हैं। जो रामावतारका एक अन्य हेतु है। वाल्मीकि-रामायणके उत्तरकाण्डके इक्यावनवें सर्गकी कथामें आया है—'प्राचीनकालकी बात है, एक बार देवासुर-संग्राममें देवताओंसे पीड़ित हुए दैत्योंने महर्षि भृगुकी पत्नीकी शरण ली। भृगुपत्नीने उस समय दैत्योंको अभय दिया और वे उनके आश्रमपर निर्भय होकर रहने लगे। 'भृगु-पत्नीने दैत्योंको आश्रय दिया है', यह देखकर कुपित हुए देवेश्वर भगवान् विष्णुने तीखी धारवाले चक्रसे उनका सिर काट लिया। अनन्तर, अपनी पत्नीका वध हुआ देख, भार्गववंशके प्रवर्तक भृगुजीने सहसा कुपित हो शत्रुकुलनाशन भगवान् श्रीहरि विष्णुको शाप दिया—

यस्मादवध्यां मे पत्नीमवधीः क्रोधमूर्च्छितः।
तस्मात् त्वं मानुषे लोके जनिष्यसि जनार्दन॥
तत्र पत्नीवियोगं त्वं प्राप्स्यसे बहुवार्षिकम्।
शापाभिहतचेतास्तु स्वात्मना भावितोऽभवत्॥

अर्थात् हे जनार्दन! मेरी पत्नी वधके योग्य नहीं थी। परंतु आपने क्रोधसे मूर्च्छित होकर उसका वध किया है। इसलिये आपको मनुष्यलोकमें जन्म लेना पड़ेगा और वहाँ बहुत वर्षोंतक आपको पत्नी-वियोगका कष्ट सहना पड़ेगा। परंतु इस प्रकार शाप देकर उनके (भृगुजीके) चित्तमें बड़ा पश्चात्ताप हुआ।'

एक अन्य कल्पमें श्रीहरिके मनुजावतारका वर्णन करते हुए शिवजी गिरिराजकुमारीसे कहते हैं—

अपर हेतु सुनु सैलकुमारी। कहउँ बिचित्र कथा बिस्तारी॥
जेहि कारन अज अगुन अरूपा। ब्रह्म भयउ कोसलपुर भूपा॥

(रा०च०मा० १।१४१।१-२)

अर्थात् हे गिरिराजकुमारी! अब भगवान्के अवतारका वह दूसरा कारण सुनो—मैं उसकी विचित्र कथा विस्तार करके कहता हूँ, जिस कारणसे अजन्मा, निर्गुण और रूपरहित (अव्यक्त सच्चिदानन्दघन) ब्रह्म अयोध्यापुरीके राजा हुए।

अनन्तर वे पार्वतीजीसे स्वायम्भुव मनु और उनकी पत्नी शतरूपाकी अनुपम तपस्याकी प्रशंसा करते हैं और तपस्वी दम्पती मनु-शतरूपाद्वारा हरिसे उस वरदानको माँगनेका वर्णन करते हैं, जिस हेतुसे उस कल्पमें श्रीहरिका रामावतार होता है। यथा—श्रीहरि तपस्वी दम्पतीसे कहते हैं—

सकुच बिहाइ मागु नृप मोही। मोरे नहिं अदेय कछु तोही॥

(रा०च०मा० १।१४९।८)

अर्थात् 'हे राजन्! संकोच छोड़कर मुझसे वर माँगो। तुम्हें दे न सकूँ, ऐसा मेरे पास कुछ भी नहीं है।' यह सुनकर राजा मनुने हाथ जोड़कर श्रीहरि विष्णुसे कहा—

दानि सिरोमनि कृपानिधि नाथ कहउँ सति भाउ।
चाहउँ तुम्हहि समान सुत प्रभु सन कवन दुराउ॥

(रा०च०मा० १।१४९)

अर्थात् 'हे दानियोंके शिरोमणि! हे कृपानिधान! हे नाथ! मैं अपने मनका सच्चा भाव कहता हूँ कि मैं आपके समान पुत्र चाहता हूँ। प्रभुसे भला क्या छिपाना।' राजा-रानीकी ऐसी अद्‌भुत भक्ति देखकर और उनके अमूल्य वचन सुनकर करुणानिधान भगवान् बोले—'ऐसा ही हो। हे राजन्! मैं अपने समान दूसरा कहाँ जाकर खोजूँ। अतः स्वयं ही आकर तुम्हारा पुत्र बनूँगा।' ····अब तुम मेरी आज्ञा मानकर देवराज इन्द्रकी राजधानी अमरावतीमें जाकर वास करो। हे तात! वहाँके बहुत-से भोग, भोगकर कुछ काल पश्चात् तुम अवधके राजा होगे। तब मैं तुम्हारा पुत्र होऊँगा। इस प्रकार—

कलप कलप प्रति प्रभु अवतरहीं। चारु चरित नाना बिधि करहीं॥

(रा०च०मा० १।१४०।२)

और उनके अवतार लेनेके हेतु भी अनन्त हैं। जिनका वर्णन 'नेति-नेति' होनेसे ***'इदमित्थं कहि जाइ न सोई।'***

धर्म

(ब्रह्मचारी श्रीत्र्यम्बकेश्वर चैतन्यजी महाराज, अखिल भारतवर्षीय धर्मसंघ)

'धृञ्' धारणार्थक धातुसे 'मन्' प्रत्यय करनेपर धर्म शब्द निष्पन्न होता है, जिसका अर्थ है, धारण करनेकी अदृष्ट शक्ति।

धरति धारयति इति धर्मः (कर्ता)।

ध्रियन्ते लोकाः अनेन इति (करण)।

सत्पुरुषैः मुमुक्षुभिः यो धृतः (कर्म)।

जीवनको सकारात्मक ऊर्जाके आलोकसे आलोकित करनेवाले नियमोंको मनीषियोंने धर्म कहा है। संसारकी विषमतम परिस्थितियोंमें विचलित होते जीवको सम्बल देनेवाला तत्त्व ही धर्म है।

यतोऽभ्युदयनिःश्रेयससिद्धिः स धर्मः।

(वैशेषिक)

अर्थात् **यतः**=जिस सदाचरणद्वारा (शास्त्रानुशासन द्वारा), **अभ्युदय**=लोकोन्नति (सांसारिक उन्नति), वस्तुतः अन्धकाराच्छन्न तमोगुणी प्रवृत्तियोंसे युक्त रागद्वेष-ईर्ष्याहंकारादिसे प्रदूषित जीवन-स्तरको सात्त्विक सत्यानुरागी तथा सर्वेश्वरके अनुरूप बनाना ही सच्चा अभि+उदय= अभ्युदय है, (अभितः=सर्वप्रकारसे उदय=उन्नति ही अभ्युदय है) **निःश्रेयस्**=परलोकमें भी जो हमारा साथ दे, हमारे कल्याणका साधक हो, **स धर्मः**=वही धर्म कहलाता है। किसी भी जाति, देश, काल, समुदायमें जीनेवाले मानवमात्रके हितका साधक है धर्म।

धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम्॥

(मनु० ६।९२)

धैर्य—प्रतिकूलतामें भी जो स्थिरताका भाव है, वही धैर्य है।

क्षमा—परकृत अपराधको सहन करते हुए, उसके प्रति सौम्यभाव।

दम—मनपर नियन्त्रण करनेकी कला।

अस्तेय—तृण, मिट्टीसे लेकर स्वर्णपर्यन्त पदार्थके प्रति आकर्षणका अभाव।

शौच—पवित्रता (मन, देह, वस्तु, वस्त्र, भोजन, उपासना, भाषण)।

इन्द्रियनिग्रह—शास्त्रानुशासनदीक्षा-प्राप्त इन्द्रियाँ।

धी—धर्मशास्त्रानुसारिणी बुद्धि।

विद्या—सत्-असत्का बोध करानेवाली विद्या।

सत्य—भय-प्रलोभनसे रहित यथाश्रुत-दृष्ट-अनुभूत कथन।

अक्रोध—परापराधसहिष्णुता, जगत्की किसी भी अनपेक्षित घटनाके प्रति महत्त्वबुद्धिका त्याग। क्रोधाग्निसे स्वयंकी सुरक्षा।

इस प्रकार इन दस नियमोंके द्वारा जब हमारा जीवन अनुशासित होगा, तब आपको निःसीम आनन्दका अनुभव होगा। तभी हम संसारको अपने सत्कर्मोंकी सुवासका अहसास कराते हुए भगवत्प्राप्तिरूपी लक्ष्यको पा सकेंगे।

धारणाद्धर्ममित्याहुर्धर्मो धारयते प्रजाः।
यत् स्याद् धारणसंयुक्तं स धर्म इति निश्चयः॥

(महाभारत)

धारण करनेकी शक्ति होनेसे ही धर्म कहा जाता है। धर्म ही प्रजाको नियमादि-पालनद्वारा धारण करता है अर्थात् सन्मार्गमें प्रवृत्त रखता है। जैसे अग्नि दाहकताको धारण करता है, अतः अग्निका धर्म है अग्नित्व, देवका देवत्व, मानवका मानवत्व, शिष्यका शिष्यत्व, जलका जलत्व आदि।

वेदप्रणिहितो धर्मो ह्यधर्मस्तद्विपर्ययः।

(श्रीमद्भागवत ६।१।४०)

वेदानुमोदित सिद्धान्त ही धर्म है।

वेदोऽखिलो धर्ममूलं स्मृतिशीले च तद्विदाम्।
आचारश्चैव साधूनामात्मनस्तुष्टिरेव च॥

(मनु० २।६)

धर्मका मूल है समग्र वेदराशि। वेदानुमोदित आचरण ही धर्म है। श्रुति-स्मृति तथा इनके पारम्परिक साम्प्रदायिक वर्णाश्रमनिष्ठ तत्त्वोंके ज्ञाता साधुजनोंके शीलाचारके साथ अन्तःकरणकी तुष्टि ही धर्मको समग्रता देते हैं।

इष्टप्राप्त्यनिष्टपरिहारसमन्वित आत्मानुसंधान-साधको धर्मः॥

अभीप्सित मनोरथोंके साधक, अनीप्सित परिस्थितियोंके निरोधक तथा मानव-जन्मकी परिपूर्ण सफलताके मूल आत्मानुसंधानका साधक धर्म है, और यही वह तत्त्व है, जिसके बलपर द्विपाद जीव (मनुष्य)-को चतुष्पाद जीवकी कोटिसे श्रेष्ठ माना जाता है। अन्यथा धर्महीन नरको पशु-समान कहा है।

आचारप्रभवो धर्मो धर्मस्य प्रभुरच्युतः।

शास्त्र-शिष्ट-स्वचित्त तथा समाजके द्वारा अनुमोदित सदाचार ही धर्म है और इस धर्मके स्वामी हैं भगवान् नारायण सर्वेश्वर सर्वनियन्ता परमात्मा श्रीहरि।

धर्म न दूसर सत्य समाना (मानस)।

परम धर्म श्रुति बिदित अहिंसा (मानस)।

परहित सरिस धर्म नहि भाई (मानस)।

वेदप्रतिपाद्योऽर्थवत्स्वरूपो धर्मः (मीमांसा)।

वेदद्वारा जिसका उपदेश हो तथा जो मानव-जीवनका प्रयोजन सिद्ध करता हो, उस नियमको धर्म कहा जाता है।

चोदनालक्षणोऽर्थो धर्मः (जैमिनि)।

सत्कर्म करते हुए सन्मार्गद्वारा सच्चिदानन्दघन परमात्माकी प्राप्तिहेतु प्रेरणा देनेवाले नियमोंको धर्म कहते हैं।

विद्वद्भिः सेवितः सद्भिर्नित्यमद्वेषरागिभिः।
हृदयेनाभ्यनुज्ञातो यो धर्मस्तन्निबोधत॥

(मनु० २।१)

राग-द्वेषरहित सन्मार्गानुगामी विद्वानोंद्वारा जिसका हृदयसे अनुमोदनपूर्वक पालन किया जाता है, वही धर्म जानने-मानने तथा पालनेयोग्य है।

वेदः स्मृतिः सदाचारः स्वस्य च प्रियमात्मनः।
एतच्चतुर्विधं प्राहुः साक्षाद्धर्मस्य लक्षणम्॥

(मनु० २।१२)

१. वेदोक्त, २. वेदसे अविरुद्ध स्मृतिप्रतिपादित, ३. वेदस्मृतिसे अविरुद्ध सदाचारोक्त, ४. वेदस्मृति तथा सदाचारसे अविरुद्ध मनोनुकूलतामूलक—ये चार प्रकार धर्मके कहे गये हैं।

अद्रोहः सर्वभूतेषु कर्मणा मनसा गिरा।
अनुग्रहश्च दानं च सतां धर्मः सनातनः॥

(महा०वन० २९७।३५)

सावित्रीने यमराजसे कहा—मनसा वाचा कर्मणा जीवमात्रके प्रति द्रोह न होना, सबपर करुणाका भाव रखना, यथासामर्थ्य दान देनेका भाव—ये सज्जनोंद्वारा सेवित-अनुपालित शाश्वत सनातन धर्म है।

प्राप्नुवन्ति यतः स्वर्गं मोक्षं धर्मपरायणाः।
मानवा मुनिभिर्नूनं स धर्म इति कथ्यते॥

(तन्त्र-शास्त्र)

जिसके द्वारा धर्मपरायण मानव स्वर्ग तथा मोक्ष प्राप्त करते हैं, मुनियोंद्वारा उसे धर्म कहा गया है।

धर्म एव हतो हन्ति धर्मो रक्षति रक्षितः।
तस्माद् धर्मो न हन्तव्यो मा नो धर्मो हतोऽवधीत्॥

(म०भा०)

धर्म हमारे द्वारा आदृत-रक्षित-पूजित होगा, तो वह धर्म हमें जगत्में आदृत-रक्षित-पूजित बनायेगा, उपेक्षित धर्म जगत्में उपेक्षित बना देगा। हमारे द्वारा कभी भी धर्म-हानि नहीं होनी चाहिये, यही ध्यातव्य है।

अस्य सम्यगनुष्ठानात् स्वर्गो मोक्षश्च जायते।
इह लोके सुखैश्वर्यमतुलं च खगाधिप॥

(भविष्यपुराण)

हे खगाधिप! धर्मके सम्यक् अनुष्ठानसे स्वर्ग तथा मोक्षकी सिद्धि तो होगी ही, साथ ही इस लोकमें अतुल्य सुख तथा ऐश्वर्य भी प्राप्त होता है।

जगतः स्थितिकारणं प्राणिनां साक्षाद् अभ्युदय-निःश्रेयसहेतुर्यः स धर्मः॥ (आद्याचार्य शंकर)

जो जगत्को धारण करनेवाला, मानवोंके अभ्युदय तथा मोक्षादिका साधक है, वह धर्म है।

उन्नतिं निखिला जीवा धर्मेणैव क्रमादिह।
विदधानाः सावधाना लभन्ते परमं पदम्॥

(तन्त्रशास्त्र)

सभी प्राणी धर्माचरणद्वारा ही उन्नतिको प्राप्त होते

हैं तथा सावधानीपूर्वक जीवन जीनेसे अन्तमें परम पदको प्राप्त करते हैं।

एक एव सुहृद् धर्मो निधनेऽप्यनुयाति यः।
शरीरेण समं नाशं सर्वमन्यद्धि गच्छति॥

(मनुस्मृति)

सांसारिक सम्मान, सम्पत्ति तथा सुन्दरता शरीरके साथ ही समाप्त हो जाती है, जबकि धर्म ऐसा सुहृत् है, जो मरनेके उपरान्त भी साथ ही रहता है।

धर्मो विश्वस्य जगतः प्रतिष्ठा लोके धर्मिष्ठं प्रजा उपसर्पन्ति।

धर्मेण पापमपनुदति धर्मे सर्वं प्रतिष्ठितम्। तस्माद् धर्मं परमं वदन्ति॥ (नारायणोपनिषद्)

धर्म जगत्‌को प्रतिष्ठा देता है। संसारमें धर्मिष्ठके पास ही प्रजा-सम्पदा पहुँचती है। धर्मद्वारा ही पाप नष्ट होते हैं। सब कुछ धर्ममें ही स्थित है। इसीलिये धर्मको सर्वश्रेष्ठ तत्त्व कहा जाता है।

श्रूयतां धर्मसर्वस्वं श्रुत्वा चैवावधार्यताम्।
आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्॥

(महाभारत)

धर्मका वास्तविक रहस्य, जिसे जानकर जीवनमें उतारना चाहिये, वह यह है कि जो व्यवहार हमें स्वयंके लिये अच्छा नहीं लगता, वह व्यवहार हम दूसरोंके साथ न करें।

आर्षधर्मोपदेशं च धर्मशास्त्राविरोधिना।
यस्तर्केणानुसन्धत्ते स धर्मो वेद नेतरः॥

धर्मशास्त्रके अविरुद्ध ऋषिप्रोक्त धर्मोपदेश (जिसे तर्ककी कसौटीपर भी खरा पाया जाता हो), उसीको धर्म जानना चाहिये, तद्भिन्नको नहीं।

धर्मेणैव जगत् सुरक्षितमिदं धर्मो धराधारकः।
धर्माद्वस्तु न किंचिदस्ति भुवने धर्माय तस्मै नमः॥

धर्मद्वारा ही जगत् सुरक्षित है, धर्म ही धराको धारण करता है, धर्मसे बढ़कर कोई वस्तु त्रिभुवनमें नहीं है, अतः धर्मको बारम्बार नमन है।

पात्रे दानं मतिः कृष्णे मातापित्रोश्च पूजनम्।
श्रद्धा बलिर्गवां ग्रासः षड्विधं धर्मलक्षणम्॥

सत्पात्रको दान, श्रीकृष्णमें भक्ति, माता-पिताका समादर, श्रद्धा-दान तथा गो-ग्रास—इस प्रकार ये षड्विध कर्म धर्मसंसूचक हैं।

सुखार्थाः सर्वभूतानां मताः सर्वाः प्रवृत्तयः।
सुखं च न विना धर्मात् तस्माद् धर्मपरो भवेत्॥

(शुक्र)

प्राणीमात्रकी प्रत्येक क्रियाका उद्देश्य सुखप्राप्ति है, जबकि सुख प्राप्त होता है धर्मसे। अतः सभीको चाहिये कि वे धर्मपरायण हों।

विद्या रूपं धनं शौर्यं कुलीनत्वमरोगता।
राज्यं स्वर्गश्च मोक्षश्च सर्वं धर्मादवाप्यते॥

विद्या, रूप, धन, वीरता, कुलीनता, आरोग्य, राज्य, पद-प्रतिष्ठा, स्वर्ग, मोक्ष—ये सभी धर्मद्वारा ही प्राप्त होते हैं।

यत्परम्पराप्राप्तमन्यदपि धर्मबुद्ध्या कुर्वन्ति तदपि स्वर्ग्यत्वाद् धर्मरूपमेव॥ (तन्त्रवार्तिकम्)

हमें हमारी कुल-परम्परा तथा गुरुपरम्परासे प्राप्त जो आचार-विचार है, वह यदि शास्त्रीय दृष्टिसे स्वीकृत है और स्वर्गप्राप्तिमें साधक भी है तो धर्म ही है। धर्म-बुद्धिसे शास्त्रानुकूल अन्याचरण भी धर्म ही है।

लोकनिन्दाशून्यत्वे सति—ह्यात्मपरितोषकारकः शास्त्रानुमोदित आचारो धर्मः॥

जिस आचरणकी समाज भी निन्दा न करता हो तथा शास्त्रीय मर्यादासे मर्यादित भी हो, वह आत्मशान्ति एवं सन्तुष्टि देनेवाला आचरण ही धर्म है।

समग्रनिषिद्धकर्मवर्जनपुरस्सरं सर्वथात्मोन्नतिं लोकोन्नतिं चोररीकृत्य शिष्टाचारपरिपालनमेव धर्मः॥

शास्त्रनिषिद्ध कर्मोंके परित्यागके सहित आत्मोन्नति तथा लोकोन्नतिको अंगीकार करते हुए शिष्टाचारका परिपालन ही धर्म है।

इतनी परिभाषाओं एवं लक्षणोंके द्वारा पूज्य सन्तों, पवित्र ग्रन्थों, विविध पन्थोंके भावोंको जानकर साररूपमें धर्मविषयक धारणा बनती है कि—

❁ मानव-जीवनको अनुशासितकर समाजोपयोगी

स्वरूप देते हुए भगवत्प्राप्तिका पात्र बननेकी प्रक्रियाका नाम ही धर्म है।

❀ संयमित जीवनके साथ उन्नति-पथका प्रेरक धर्म है।

❀ शास्त्र, सन्त, शिष्टजनों तथा समाजद्वारा समर्थित वह सदाचार; जिससे किसी जीवका अहित न होता हो, धर्म कहा जा सकता है।

❀ सार्वभौम सर्वजनीन हितसाधक नियमोंके समूहको धर्म कहते हैं।

❀ उभयलोकहितकारक वह नियम—जिसके पालनसे किसीका अहित न होता हो, जिसके आचरणसे सुख, शान्ति, सन्तोष और प्रसन्नताका अनुभव हो, वही धर्म है।

वास्तवमें धर्म जटिलता, कुटिलता, मलिनतासे व्यक्तिको बचाकर सरलता, पवित्रता तथा समाधानकी ओर ले जानेकी प्रक्रिया है। हम परिणामके प्रति सजग तो रह सकते हैं, परंतु अत्यासक्त न हों। प्रकृतिप्रदत्त प्रत्येक परिस्थितिको स्वकृत कर्मका परिणाम मानकर सहजतासे स्वीकार करनेवाला व्यक्ति ही सहिष्णु है, धैर्यशाली है, धार्मिक है। जो दूसरोंपर आक्षेप नहीं करता, दूसरोंको उलाहना नहीं देता, विषमताको मिटाकर समताकी स्थापनाका प्रयास करता है, वही सच्चे अर्थोंमें धर्मके मर्मको जान सकता है। धर्म हमें कट्टर-संकीर्ण-असहिष्णु नहीं बनाता। अपितु समन्वयी, उदार तथा क्षमाशील बनाता है। धर्म व्यक्तिको दृढ़ता देता है, अस्थिरता नहीं। श्रद्धा-विश्वासको सम्बल देता है, शंका, संशयका दलदल नहीं।

परमान्यता, परमर्यादा, परमत, परपरम्परा, परसंस्कार, परसंस्कृतिका आदर करनेकी भावना तथा अपनी मान्यता, अपनी मर्यादा, अपने शास्त्रीय मत, अपनी परम्परा, अपने कुलक्रमागत संस्कार, अपनी शाश्वत संस्कृतिका पालन करनेकी उदात्त भावना धर्म ही सिखाता है। अत: भगवद्गीतामें भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं कि अपने धर्ममें मृत्युतुल्य क्लेश भोगते हुए भी जीना श्रेष्ठ है, परंतु अन्यके धर्मका अनुसरण करके सुख भोगना जीतेजी नरक है, अपमान है, भय है। **(स्वधर्मे निधनं श्रेय: परधर्मो भयावह: ।)** धर्म बन्धन नहीं, मुक्तिका उपदेशक है। दु:खोंमें भी जो सहारा बनकर दिलको सहारा दे, वही धर्म है।

हिंसा और प्रलोभनके बलपर यदि धर्मका विस्तार उचित होता, तो आज विश्वमें सनातन हिन्दू धर्मका नामोनिशान ही न बचता; क्योंकि हिन्दूका इतिहास गवाह है कि इसने कभी किसीको धन या बलके सहारे अपनेमें नहीं मिलाया। कभी धर्मके नामपर रक्तपात नहीं किया। हमारे यहाँ तो चार्वाकतकको स्वीकार किया गया है। हिन्दुत्वके प्रारम्भकी तिथि कोई नहीं बता सकता। इस सनातन धर्मका प्रवर्तक कौन है, ये नहीं बता सकता। जबकि अन्य मत, मजहब, रिलीजन आदि सबका प्रवर्तक है, सबकी प्रारम्भतिथि प्राप्त है। सबकी कोई एक पुस्तक भी निश्चित है। परंतु सनातन धर्मकी विशेषता है कि ये अनादि-अनन्त है। लोग आते-जाते रहते हैं, लेकिन सनातन शाश्वत है। अविनाशी है। अजर-अमर है।

सर्वस्मिन् एकत्वदर्शनम्। एकस्मिन् सर्वत्वदर्शनम्।

भिन्न-भिन्न नाम-रूपोंमें भासित होनेपर भी परमात्मा एक है तथा उसका प्रतीक सनातनधर्म भी एक है। सनातन जीवोंके सनातन कल्याणके लिये सनातन परमात्माने सनातन संविधान (वेदों)-द्वारा जिन सनातन नियमोंका निरूपण किया, उसीको सनातनधर्म कहते हैं।

दूसरोंके लिये जीनेकी शिक्षा देनेवाला धर्म ही है। पशु अन्य पशुके लिये नहीं जीता, मनुष्य जी सकता है। इसीलिये धर्मसे हीन मनुष्यको पशुके समान ही माना गया है। **(धर्मेण हीना: पशुभि: समाना:)** हम केवल नामके धार्मिक न बनें, वेशद्वारा बाह्य स्वरूपमात्रसे हमारी धार्मिकता न हो, हमारी धार्मिकता हमारी वाणी, व्यवहार तथा चिन्तनके सहित चित्तकी गहराइयोंतक रची-बसी हो। हमारी आँखोंमें, चेष्टाओंमें, स्वभाव-प्रभावमें, हर्ष-शोकमें, निन्दा-स्तुतिमें, जीवन-मरणमें—सर्वत्र धर्मकी पावन झलक दिखती रहे।

'राम-राम सा'

(डॉ० श्रीनन्दकिशोरजी शर्मा, एम०ए०, एल-एल०बी०)

भारतीय संस्कृतिमें अभिवादनकी अनेक विधाएँ हैं। किसीसे प्रथम बार भेंट करते ही—मिलते ही आदर, स्नेह, आशीर्वाद एवं आत्मीयताकी अभिव्यक्तिको अभिवादनकी संज्ञा दी गयी है। अपनेसे बड़ोंके प्रति, समवयस्कोंके प्रति, छोटोंके प्रति क्रमशः सम्मान, प्रेम, स्नेह, आशीष-प्रदानके लिये नमन, नमस्कार, प्रणाम, साष्टांग प्रणाम, दण्डवत् (दण्डौत), पावां ढोक, पाँय लागूँ, सप्रेम भेंट, आशीर्वचन (प्रसन्न रहो, चिरायु रहो) आदि पत्र-व्यवहारमें अथवा प्रत्यक्ष वाणी या शारीरिक मुद्राओंके साथ, इन अभिव्यक्तियोंद्वारा किया जाता है। समवयस्कों, नवागन्तुकों, अपरिचितोंके मिलनेपर भी नमस्कार, नमस्ते, राम-राम, जय श्रीकृष्ण, जय रघुनाथ, जय रामजी, सीता-राम, राधे-कृष्ण, राऽधा-कृष्ण आदि कहनेकी परम्परा है। इन सबमें राजस्थान, मालवा, मध्यप्रदेश, उत्तरप्रदेश तथा देशके अनेक भागोंमें सर्वाधिक प्रचलित शब्द 'राम-राम सा' है। वहाँ यह परम्परा आज भी विद्यमान है। प्राचीनकालमें यात्राएँ अधिकतर पैदल, घोड़े, बैलगाड़ियोंसे होती थीं। एक स्थानसे दूसरे स्थानपर पैदल जानेवाला पथिक, सामनेसे आनेवाले दूसरे ज्ञात हो या अज्ञात, परिचित हो या अपरिचित पथिकसे अभिवादनद्वारा संवाद प्रारम्भ करता था, 'राम-राम सा' बोलता तो उत्तरमें सामनेवाला पथिक भी बड़े प्रेमसे बोल पड़ता राम-राम सा, राम-राम। इसके बाद यदि कोई बात एक-दूसरेसे पूछनी होती, जैसे पानी पीनेके स्रोत, कुएँ, तालाब, नदी आदिकी जानकारी, मार्गकी, गन्तव्य स्थानकी दूरी आदि पूछी जाती। यदि कुछ भी नहीं पूछना होता तो भी 'राम-राम सा' कहकर एक-दूसरेका अभिवादनकर अपने गन्तव्यकी ओर बढ़ जाते। दो यात्रियों या पथिकोंके परस्पर राम-राम कहनेसे प्रत्येकके मुँहसे 'राम' शब्द दो बार निकलता और कानमें चार बार 'राम' शब्दकी ध्वनि गूँजती। दो बार स्वयंके द्वारा कही और दो बार सामनेवालेद्वारा कही हुई। अन्य सहयात्रियोंके भी कानोंमें चार बार 'राम' शब्दकी ध्वनि गूँजती। कितनी सरल अभिवादन-शैली, न शब्दोंकी क्लिष्टता, न वर्णभेद, न वर्गभेद, न लिंगभेद। उच्चारण करनेमें बालक, वृद्ध, स्त्री, पुरुष, पढ़, अनपढ़, किसीको कोई कठिनाई नहीं। सहजरूपसे कहनेमें आ जाता।

अब इस 'राम-राम' शब्दका चमत्कार देखिये, कि किस प्रकार ये दो शब्द (चार अक्षर) एक माला (१०८)-की पूर्ति करते हैं। हिन्दी वर्णमालाके क्रममें स्वर एवं व्यंजनोंके पृथक्-पृथक् क्रममें 'राम' शब्दका गठन 'र+आ+म' से मिलकर हुआ है।

व्यंजनोंमें 'र' का क्रम २७ पर है, स्वरोंमें 'आ'का क्रम २ है, 'म'का क्रम २५ है। अतः 'र+आ+म' कहनेसे २७+२+२५=५४ की संख्या बनती है। दो बार 'राम' कहनेसे ५४+५४=१०८ अर्थात् एक माला बनती है। इस प्रकार हो गयी पूरी एक माला। स्वर हो या व्यंजन सबमें 'अ' छिपा है, जो ओंकार, अल्लाह, ओसा (ईसा)-में प्रथमाक्षर है। इस 'अ'से अनादि, अनन्त, अज, अविनाशी, अक्षय, अजर, अमर आदि ईश्वरीय गुणोंका बोध होता है। जो कभी क्षर न हो, वह अक्षर। अक्षरमें इन ईश्वरीय शक्तियोंका बोध होता है, जो प्रत्येक स्वर-व्यंजनमें व्याप्त हैं। यूँ तो सभी भगवन्नामोंमें परमात्माकी अभिव्यक्ति होती है, पर अन्य सभी नामोंकी अपेक्षा 'राम' शब्दमें उच्चारणकी सरलता अधिक है। यह सर्वव्यापक है। एक महात्माजी इस राम नामके उच्चारणके महत्त्वको समझकर, कोई भी बात करते समय—जिज्ञासुओंकी जिज्ञासाका उत्तर देते समय प्रारम्भ और अन्तमें 'राम-राम सीताराम' कहते थे। उनके हर वाक्यमें यह 'राम-राम सीताराम'का युग्म जुड़ा रहता था; क्योंकि 'राम-राम'के साथ सीताराम कहनेसे दो मालाका लाभ मिलता है। इस शब्द 'सीताराम'का संयोजन स+ई +त+आ=सीता। वर्णमालाके क्रमसे 'स'का क्रम ३२, 'ई'का क्रम ४, 'त'का क्रम १६, 'आ'का क्रम २ है। इस प्रकार सीता कहनेसे ३२+४+१६+२=५४ का अंक बन गया, रामके ५४+सीताके ५४=१०८ बने। इस प्रकार राम-राम कहनेसे एक माला और सीताराम

कहनेसे एक माला। इस प्रकार दो माला पूरी हुई।

'कृष्ण-कृष्ण' कहनेसे भी इस नामकी एक मालाका लाभ मिलता है। देखिये वर्णमालाके व्यंजनोंमें 'क'का क्रम १ है, स्वरमें 'ऋ'का क्रम ७ है, 'ष'का क्रम ३१ और 'ण'का क्रम १५ है। 'कृष्ण' इन्हीं अक्षरोंके गठनसे बना है। क+ऋ+ष+ण=कृष्ण। क=१+ऋ=७ +ष=३१+ण=१५=कुल योग ५४की संख्या बन गयी, दो बार कहा तो १०८की एक माला पूरी हो गयी। इसलिये 'राम' और 'कृष्ण' दोनोंमें समानता होनेके कारण भक्त कहते हैं—***जगमें सुंदर हैं दो नाम, चाहे कृष्ण कहो या राम।*** कृष्ण बाँकेबिहारी हैं, इसलिये उनका नाम भी बाँका है। पर भोले भक्तोंके लिये वह बढ़ई बन जाता है, किसीका छप्पर छाने लगता है, कभी मस्तीमें नाचने लगता है, रासलीला करने लगता है, उसका नाम बिगाड़कर बोलनेसे भी वह नाराज नहीं होता। नरसी मेहताके लिये वह किशन बन जाता है। 'किशन' कहनेपर भी वह कृष्णकी शक्ति बनाये रखता है। शब्द 'किशन'का संयोजन 'क+इ+श+न'से हुआ है। अपने कृष्ण नामकी शक्तिको बराबर बनाये रखते हुए क=१+इ=३+श=३० +न=२० कुल योग ५४। इस प्रकार किशन शब्दमें भी कृष्णका गुण ५४ निहित है। सीतारामके युग्मकी तरह राधा-कृष्ण कहनेसे भी १०८की एक मालाका लाभ मिल जाता है। र+आ+आ+ ध+आ+आ=राऽधाऽ, कृष्ण संगीत-कलामें बाँसुरी-वादनमें प्रवीण हैं, उनके मुखपर मुरली अधरोंकी शोभा बढ़ाती है, संगीतकी विद्यामें रा और धामें (रागमें) आके स्वरको थोड़ा दीर्घ (लम्बा) बनाया जाता है, जिसे अलंकार कहते हैं। राधाको अलंकृत करनेके लिये राऽधाऽ अर्थात् र+आ+आ+ ध+आ+आ लम्बा राग आलापकर उच्चारण करनेसे रा=२७+आ=२+आ=२+ध= १९+आ=२+आ=२ कुल योग ५४। इस प्रकार राऽधाऽ-कृष्ण शब्दके उच्चारणसे भी ५४ की संख्या बनती है। कृष्ण शब्द जुड़नेसे कृष्णके ५४ अंककी संख्या मिलाकर १०८ बनती है। राधा-कृष्णके नामका सही लाभ लेनेके लिये राधा शब्दको थोड़ा लम्बा करके बोला जाता है। इससे आनन्द भी आता है, राऽधाऽकृष्ण, राऽधाऽकृष्ण। राऽधाऽ शब्दके उच्चारणमें सरलता है, तो कृष्ण नामके उच्चारणमें बाँकापन है। गोवर्धनपर्वतकी गिरिराजकी परिक्रमा करनेवालोंने देखा होगा कि वहाँ दो कुण्ड हैं, एक राधाकुण्ड, एक श्यामकुण्ड। राधाकुण्ड राधाजीकी तरह सीधा चौरस है। वहीं कृष्णकुण्ड थोड़ा आड़ा-टेढ़ा है। कृष्णका मथुराका प्रसिद्ध मंदिर भी बाँकेबिहारीके नामसे ही जाना जाता है। 'सीताराम' और 'राऽधाऽकृष्ण' दोनों युग्म पूर्ण ब्रह्म १०८की पूर्ति करते हैं। पर रामकी सरलतासे वह जिह्वापर जल्दी आ जाता है। रोम-रोममें बसे होनेके कारण ही 'राम' कहलाया। थोड़ी-सी भी मुसीबत आयी नहीं कि 'राम' शब्द मुँहसे निकल जाता है। जब मनुष्य सब ओरसे टूट जाता है तो बोल पड़ता है—'हे राम, अब तो बस तू है।' बस रामको ज्योंही वह समर्पण कर देता है तो बिगड़ी बात बनने लगती है, अन्तकाल होनेपर शवको चितापर ले जाते समय शवयात्रामें 'राम नाम सत्य है'के बोल सुनायी पड़ते हैं, तो राम और सत्यका जोड़ा माया और ब्रह्मका युग्म है। जीव माया है और ईश्वरका वाचक राम ब्रह्म है, जीवका ब्रह्ममें लीन होना राम और सत्यका मिलन है। राम सूर्यवंशी वेदके '**अग्निमीडे**'में समाहित अग्निरूप पूर्ण ब्रह्म हैं।

राम सूर्यवंशी हैं। उनके प्रथमाक्षर 'र'को अग्निके बीजमन्त्र 'रं'से अंकितकर यज्ञमें अग्नि प्रज्वलित की जाती है। यह अग्निका बीजमन्त्र ज्योतिस्वरूप है। ऋग्वेदका प्रथम मन्त्र 'अग्निमीडे' अग्नि शब्दसे ही प्रारम्भ होता है। अग्नि सूर्यका और सूर्य अग्निका प्रतिरूप है। राम सूर्यवंशी हैं। सूर्य और अग्नि प्रकाश और ज्योति:पुंज हैं, अन्धकार दूरकर प्रकाश फैलाते हैं। पाप, विकाररूपी अन्धकारको चीरकर ज्ञान शिवसंकल्पोंके प्रकाशद्वारा मार्ग प्रशस्त करते हैं। '**तमसो मा ज्योतिर्गमय**'। प्रकाशका यह गुण है कि वह जानेमें हो या अनजानेमें हो, अन्धकारको दूर भगाता ही है। वैसे ही 'राम' नामका भी जान या अनजानमें उच्चारण करनेसे अज्ञान और पापरूपी अन्धकारका नाश होता है।

गलत होनेपर भी जो साथ दे, वह मित्र नहीं घोर शत्रु है

(श्रीसीतारामजी गुप्ता)

अभी हालमें ही फ्रेंडशिप डे गुजरा है। क्यों मनाया जाता है फ्रेंडशिप डे? फ्रेंडशिप क्या है? क्या फ्रेंडशिप-बैंड बाँधनेमात्रसे फ्रेंडशिप अथवा मित्रताका निर्वाह सम्भव है? क्या एक साथ बैठकर खा-पी लेने अथवा मटरगश्ती कर लेनेका नाम ही फ्रेंडशिप है? क्या फ्रेंडशिप सेलिब्रेट करनेकी चीज है? फ्रेंडशिप अथवा मित्रताका जो रूप आज दिखलायी पड़ रहा है, वास्तविक मित्रता उससे भिन्न चीज है। मित्रता सेलिब्रेट करनेकी नहीं, निभानेकी चीज है। मित्रता एक धर्म है और धर्मका पालन किया जाता है, प्रदर्शन नहीं।

गोस्वामी तुलसीदासजी कहते हैं—

धीरज धर्म मित्र अरु नारी। आपद काल परिखअहिं चारी॥

धैर्य, धर्म, मित्र और पत्नीकी परीक्षा विषम परिस्थितियोंमें ही होती है। ठीक भी है, जो संकटके समय काम आये, वही सच्चा मित्र। पुरानी मित्रता है, लेकिन संकटके समय मुँह फेर लिया तो कैसी मित्रता? ऐसे स्वार्थी मित्रोंसे राम बचाये। यहाँतक तो कुछ ठीक है, लेकिन संकटकाल अथवा विषम परिस्थितियोंकी सही समीक्षा भी जरूरी है।

श्रेष्ठ मित्र, कुमित्र और कपटी मित्रके विषयमें वर्णन करते हुए गोस्वामीजी लिखते हैं—

जे न मित्र दुख होहिं दुखारी। तिन्हहि बिलोकत पातक भारी॥
निज दुख गिरि सम रज करि जाना। मित्रक दुख रज मेरु समाना॥
जिन्ह कें असि मति सहज न आई। ते सठ कत हठि करत मिताई॥
कुपथ निवारि सुपंथ चलावा। गुन प्रगटै अवगुनन्हि दुरावा॥
देत लेत मन संक न धरई। बल अनुमान सदा हित करई॥
बिपति काल कर सतगुन नेहा। श्रुति कह संत मित्र गुन एहा॥
आगें कह मृदु बचन बनाई। पाछें अनहित मन कुटिलाई॥
जाकर चित अहि गति सम भाई। अस कुमित्र परिहरेहिं भलाई॥
सेवक सठ नृप कृपन कुनारी। कपटी मित्र सूल सम चारी॥

अर्थात् जो लोग मित्रके दुःखसे दुखी नहीं होते, उन्हें देखनेसे ही बड़ा पाप लगता है। अपने पर्वतके समान दुःखको धूलके समान और मित्रके धूलके समान दुःखको सुमेरु (बड़े भारी पर्वत)-के समान जाने। जिन्हें स्वभावसे ही ऐसी बुद्धि प्राप्त नहीं है, वे मूर्ख हठ करके क्यों किसीसे मित्रता करते हैं? मित्रका धर्म है कि वह मित्रको बुरे मार्गसे रोककर अच्छे मार्गपर चलाये। उसके गुण प्रकट करे और अवगुणोंको छिपाये। देने-लेनेमें मनमें शंका न रखे। अपने बलके अनुसार सदा हित ही करता रहे। विपत्तिके समयमें तो सदा सौगुना स्नेह करे। वेद कहते हैं कि संत (श्रेष्ठ) मित्रके गुण (लक्षण) ये हैं। जो सामने तो बना-बनाकर कोमल वचन कहता है और पीठ-पीछे बुराई करता है तथा मनमें कुटिलता रखता है—हे भाई! [इस तरह] जिसका मन साँपकी चालके समान टेढ़ा है, ऐसे कुमित्रको तो त्यागनेमें ही भलाई है; क्योंकि मूर्ख सेवक, कंजूस राजा, कुलटा स्त्री और कपटी मित्र—ये चारों शूलके समान [पीड़ा देनेवाले] हैं।

हमारे देशके साहित्य और धर्मग्रन्थोंमें मित्रतापर पर्याप्त प्रकाश डाला गया है। सच्चे मित्रके लक्षण बतानेके साथ-साथ मित्रके कर्तव्योंका भी वर्णन किया गया है। रामायण, महाभारतसे लेकर श्रीरामचरितमानस एवं अन्य आधुनिक ग्रन्थोंमें सभी जगह मित्रताके महत्त्वको प्रतिपादित किया गया है।

उर्दू शायरीमें तो दोस्ती ही नहीं दुश्मनीपर भी खूब लिखा गया है और दुश्मनीपर लिखनेके बहाने दोस्तीके नामपर धोखाधड़ी करनेवालोंकी जमकर खबर ली गयी है। मिर्जा 'गालिब' एक बेहद दोस्तपरस्त इंसान थे। पर हालातसे बेजार होकर ही वे ऐसा लिखनेपर मजबूर हुए होंगे—

यह फितना आदमी की खानावीरानी को क्या कम है,
हुए तुम दोस्त जिसके दुश्मन उसका आसमाँ क्यों हो।

अर्थात् एक-दूसरेको आपसमें लड़ाकर बरबाद कर देनेवाले यदि मित्र हैं, तो शत्रुओंकी क्या आवश्यकता!

एक पुस्तकमें एक बॉक्समें मोटे-मोटे शब्दोंमें मित्र-विषयक एक विचार छपा देखा, 'सच्चे आदमीका तो सभी साथ देते हैं। मित्र वह है, जो गलत होनेपर भी साथ दे।' क्या यहाँपर मित्रसे कुछ अधिक अपेक्षा नहीं की जा रही है? मेरे विचारसे अधिक ही नहीं गलत अपेक्षा की जा रही है। गलत होनेपर साथ दे, वह कैसा

मित्र? गलती होनेपर उसे दूर करवाना और दोबारा गलती न हो, इस प्रकारका प्रयत्न करना तो ठीक है, पर किसीके भी गलत होनेपर उसका साथ देना, किसी भी तरहसे उचित नहीं ठहराया जा सकता। कई बार दोस्ती की ही जाती है किसी खास उद्देश्यके लिये। ऐसी दोस्ती, दोस्ती नहीं व्यापार है। घिनौना समझौता है। स्वार्थपरता है, कुछ भी हो, पर दोस्ती नहीं। इस्माइल मेरठी फरमाते हैं—

दोस्ती और किसी गरजके लिये,
वो तिजारत है दोस्ती ही नहीं।

अर्थात् मित्रता यदि किसी उद्देश्यविशेषके लिये की जाय, तो वह वास्तवमें मित्रता है ही नहीं, वह तो व्यापार है।

ऐसा नहीं है कि अच्छे मित्रोंका अस्तित्व ही नहीं है, लेकिन समाजमें मित्रताके नामपर ज्यादातर समान विचारधारावाले लोगोंका आपसी गठबन्धन ही अधिक दिखलायी पड़ता है। अब ये समान विचारधारावाले लोग अच्छे भी हो सकते हैं और बुरे भी। अब यदि ये समान विचारधारावाले लोग अच्छे हैं तो उनकी मित्रतासे समाजको लाभ होगा, लेकिन यदि समान विचारधारावाले ये लोग अच्छे नहीं हैं, तो उनकी मित्रतासे समाजमें अव्यवस्था अथवा अराजकता ही फैलेगी।

मेरे अन्दर कुछ कमियाँ हैं, कुछ दुर्बलताएँ हैं और सामनेवाले किसी अन्य व्यक्तिमें भी ठीक उसी तरहकी कमियाँ और दुर्बलताएँ हैं, तो दोस्ती होते देर नहीं लगती। ऐसे लोग एक-दूसरेकी कमियों और दुर्बलताओंको उचित मानकर मित्रताका बन्धन सुदृढ़ करते रहते हैं। व्यभिचारी एवं चरित्रहीन लोगोंकी दोस्तीका ही परिणाम है, जो आज देशमें सामूहिक बलात्कार-जैसी घटनाएँ इस कदर बढ़ रही हैं। इन घटनाओंको अंजाम देनेवाले दरिन्दे आपसमें गहरे दोस्त ही तो होते हैं।

किसी भी कार्यालय, संगठन अथवा संस्थानमें गुटबन्दीका आधार प्राय: दोस्ती ही तो होती है न कि कोई सिद्धान्त, जो उस संगठन अथवा संस्थानको बर्बाद करके रख देती है। सत्ताका सुख भोगनेके लिये कट्टर दुश्मनतक हाथ मिला लेते हैं और मिलकर भोली-भाली निरीह जनताका खून चूसते रहते हैं। हर गलत-सही काममें एक-दूसरेका साथ देते हैं, समर्थन और सहायता करते हैं। ऐसी दोस्ती देशको खोखला करनेवाली होती है।

एक प्रश्न उठता है कि सिर्फ दोस्तकी ही मदद क्यों? हर जरूरतमन्दकी मदद की जानी चाहिये और इस प्रकारसे जिन सम्बन्धोंका विकास होगा, वही उत्तम प्रकारकी अथवा उत्कृष्ट मित्रता होगी। एक बात और, वह यह कि जब हम किसीसे मित्रता करते हैं, तो उसके शत्रुओंको अपना शत्रु मान बैठते हैं और बिना पर्याप्त कारणके भी मित्रके पक्षमें होकर उनसे उलझते रहते हैं, चाहे वे कितने भी अच्छे क्यों न हों। ये तो कोई मित्रताका सही निर्वाह नहीं हुआ। मित्र ही नहीं, विरोधीकी भी सही बातका समर्थन और शत्रु ही नहीं, मित्रकी भी गलत बातका विरोध होना चाहिये। उर्दूके प्रसिद्ध शायर 'आतिश' कहते हैं—

मंजिले-हस्ती में दुश्मन को भी अपना दोस्त कर,
रात हो जाय तो दिखलावें तुझे दुश्मन चिराग।

अर्थात् इस जीवन-यात्रामें शत्रुको भी अपना मित्र बना लो, जिससे रात हो जानेपर वे लोग भी तुम्हें दीपक दिखायें यानी संकटमें सहायता करें।

और यह तभी सम्भव है, जब हमारा विरोधी, प्रतिद्वन्द्वी अथवा शत्रु भी कोई सही बात कहे या करे तो उसकी हमारे मनसे स्वीकृति हो। ऐसा करके हम शत्रुताको ही हमेशाके लिये अलविदा करके नयी दोस्तीका निर्माण कर सकते हैं। जहाँतक मित्रकी मदद करनेकी बात है, अवश्य कीजिये। दोस्तके लिये जान कुर्बान कर दीजिये, लेकिन तभी; जब दोस्त सत्यके मार्गपर अडिग हो, गलत बातसे समझौता करनेको तैयार न हो और उसका जीवन संकटमें पड़ गया हो।

लेकिन यदि दोस्त कुमार्गगामी है, उसका मार्ग अनुशासन, नैतिकता और धर्मके विरुद्ध है, जो समाज, राष्ट्र और मनुष्यताके लिये घातक है, तो ऐसी अवस्थामें मित्रको समझा-बुझाकर सही मार्गपर लाना ही सच्ची मित्रता है न कि उसके गलत कार्यमें बाधा उपस्थित होनेपर उसकी मदद करना। कुमार्गगामी मित्रको मित्र मानना और उसकी सहायता करना बेमानी ही नहीं मानवताके प्रति अपराध है और सबसे महत्त्वपूर्ण तो ये है कि हमारे गलत होनेपर भी जो हमारा पक्ष ले, हमारी मदद करे, वह हमारा मित्र नहीं, घोर शत्रु है।

वसन्तका वैदिक स्वरूप

(श्रीपन्नालालजी परिहार, बी०ए०, एल-एल०बी०)

वसन्त ऋतुमें दिव्य आश्रयलोक त्रिपुट अर्थात् तिगुने रूपमें अति प्रबलतासे प्रकट होते हैं। इस ऋतुमें प्राणबलद्वारा तथा अग्निके उत्तरोत्तर तेज-प्रभावसे जीवात्मा और समस्त प्राणी-जगत्‌में अन्न, आयु और बल धारण किया जाता है और क्रमशः बढ़ाया जाता है। ज्यों-ज्यों मकर सौर संक्रान्तिके उपरान्त सूर्यदेव उत्तरायण अभिमुख होते हुए उत्तरोत्तर तेजस्वी होते हैं, त्यों-त्यों यह क्रिया तीव्र होती जाती है। सृष्टिका यह रथन्तर है, जो प्रतिवर्ष आता है। पृथ्वी अपनी धुरीपर घूमती है। इससे रात-दिन होते हैं। पृथ्वी एक परिधि-पथपर सूर्यके चारों ओर भी चक्कर लगाती है। इससे ऋतुएँ होती हैं। भगवान्‌से प्रेरित ये स्वाभाविक क्रियाएँ ऋतशक्तिके आधारपर और उसी कारणसे होती हैं। मानवी वर्षके १२ मासमें १२ संक्रान्तियाँ आती हैं। जिनके दो-दो मासमें विभाग करनेसे छः ऋतुएँ बनती हैं। जब सूर्य छः मासतक दक्षिणायनमें रहता है, तब हमारा उत्तरायण खण्ड शीतमय होता है। दारुण शीतकाल मकरका होता है। इसके बाद सूर्य उत्तरायण अभिमुख होते हैं। वही वसन्तका प्रारम्भ है, वही मधु-माधव है। मधुमासमें समस्त वनस्पतिवर्ग और प्राणीजगत् मधुरतामें ओतप्रोत हो जाता है। उसमें मधुका संचार होता है। माधुर्यसम्पन्न होनेके पश्चात् वृक्ष-लतादिमें किसलय, नवकुसुम अंकुरित होते हैं तथा हमारे धरातलका वातावरण सुगन्ध-सुरभिसे सौम्य और फलोत्पादक बनता है। मधु-माधव वसन्तके दो स्वरूप हैं। यही संवत्सर अग्निके दो रूप हैं, जो यजुर्वेदकी परिभाषामें अन्तःश्लेष कहलाते हैं। यह रथन्तर क्रिया-चक्र कल्पसे लेकर कल्पान्ततक चलता रहता है। वसन्त इसका एक प्रमुख आरा है।

वसन्त ऋतुमुख है। यह संवत्सरका सिर है। श्रीमद्भगवद्गीताने इसे '**ऋतूनां कुसुमाकरः**' बतलाया है। यही ऋतुराज, प्रथम ऋतु और प्रकृतिका राजा है। इसीको कल्पपर्व कहा जाता है; क्योंकि सर्ग-सृष्टि इसी कालसे प्रारम्भ हुआ करती है। वसन्तमें सृष्टि बसानेवाला तत्त्व प्रादुर्भूत होता है। प्राणी-जगत्‌के प्रकट होनेका यही काल माना जाता है। इसीमें पदार्थ अपने यौवनपर आते हैं। संसारमें स्फूर्ति, चेतना और प्रगतिका श्रीगणेश यहींसे होता है। यहाँतक कि इसीमें ओषधियाँ बलवती होकर अपनेमें भर्गः—ज्योति उत्पन्न करती हैं।

अत्यन्त प्राचीन कालसे ही कवियोंने इस ऋतुराजकी महिमाका बखान किया है। कभी यह मदनोत्सव कहलाता था। भगवान् शिवजीने इसी ऋतुमें कामको भस्म किया था। यह कथा अध्यात्मवादपर आधारित है।

हमें अब यह देखना है कि वेदभगवान्‌ने इस ऋतुका कैसे विवेचन किया है। यजुर्वेदके २१ वें अध्यायमें २३ वाँ मन्त्र इस प्रकार है—

वसन्तेन ऋतुना देवा वसवस्त्रिवृता स्तुताः।
रथन्तरेण तेजसा हविरिन्द्रे वयो दधुः॥

इस मन्त्रपर सायण, उव्वट आदि भाष्य उपलब्ध हैं। वेदकी सारगर्भित उक्तिपर पर्याप्त प्रकाश डाला गया है। परंतु वेदके पारिभाषिक शब्दोंकी विशद व्याख्याकी आवश्यकता है। इन शब्दोंकी ओटमें '**अनन्ता वै वेदाः**' का रहस्य छिपा हुआ है। वेद तो देवकाव्य है। उसका पूर्ण अनुवाद मानवी भाषामें होना कठिन है। हाँ, थोड़ा-बहुत प्रवचन हो सकता है। हमें भी थोड़ा-सा विचार करना है!

इस मन्त्रके ऋषि आत्रेय हैं और देवता लिंगोक्ताः। इसमें ऋतु-सम्बन्धी, सृष्टि-रचना, राष्ट्रवाद और शिक्षा-विषयमें कुछ मूल सिद्धान्त दर्शाये गये हैं।

ऋतुपरक भावार्थ

वसन्त ऋतुमें दिव्य अष्ट वसुलोक त्रिवृत् तिगुने अर्थात् प्रबलरूपसे प्रकट होते हैं। निवासयोग्य पृथिव्यादि लोकोंमें नवीन जागृति उत्पन्न होती है। रथन्तर अर्थात् उत्तरोत्तर प्रबलताको धारण करते हुए सूर्यके प्रकाशसे हवि अर्थात् अन्नादिकी खेती इसी ऋतुमें पकती है। इन्द्र अर्थात् प्राणीवर्गमें वय, आयु और बल धारण किया जाता है। अन्नोंका पकना, प्राणोंमें बल आना और

चित्तका प्रफुल्लित होना इस ऋतुका प्रभाव है। पौष्टिक नवान्न होलाके रूपमें उत्पन्न होता है। प्राकृतिक दैवी शक्तियाँ जाग्रत् होती हैं और प्रकाश, मोद और काम्यता बढ़ती है। त्रिदेव प्रसन्न होते हैं, शरीरकी इन्द्रियाँ रंजित होती हैं और वसुगण त्रिवृत् रूपसे विकसित होते हैं। प्राण, अपान और व्यानरूप त्रिवृत् सुखद होते हैं और हमें त्रिविध सुख मिलता है। त्रिविध शरीरमें आनन्दकी लहर उठती है। इस ऋतुमें त्रिवृत् नामक यज्ञ किया जाता है। जिसके तीन अंग देवपूजा, संगतिकरण और दान हैं। वर्तमान भूखे भारतमें भी आनन्दकी लहर उमड़ आती है। सभी वर्गके लोग वसन्त फागके स्वर गुनगुनाने लगते हैं। किसान और मजदूर—सभी लोग आशान्वित हैं कि अब **'हरिरिन्द्रे वयो दधुः'** है अर्थात् अन्नादि पकनेसे वह प्राणी-जगत्में निर्वाहका सहारा बनेगा। यह भगवान्की कृपा है।

सृष्टि-उत्पत्तिका भावार्थ

वसन्तमें अर्थात् बसनेयोग्य सर्गमें, जो प्राणियोंका निवास-युग कहलाता है, भगवान्की ऋतुशक्तिद्वारा पृथ्वी आदि आठ वसुगण तथा लोकादि दिव्य पदार्थ प्रकट होते हैं। ये दिव्य वसु त्रिवृत् होते हैं। इनके तीन विभाग होते हैं—पृथ्वी, अन्तरिक्ष और द्यौ। इनमें ग्यारह-ग्यारह देव बसते हैं। इन देवोंमें त्रिगुणरूप होता है। यही इनका त्रिवृत् है। ये सत्त्व, रज और तमसे आवृत और उत्पत्ति, स्थिति और प्रलयरूप त्रिशक्ति-युक्त होते हैं। परमात्माने जितनी और जिस प्रकारकी शक्ति अमुक पदार्थमें निहित की है, वह उसी सीमामें क्रिया करता है। भौतिक सत्य-नियम इस आध्यात्मिक नियमका उल्लंघन नहीं कर सकते। सब परमाणु त्रिवृत् अर्थात् तीन रूप और त्रिकालके बन्धनमें हैं। यह रथन्तर चक्र कल्पारम्भसे प्रलयतक चलता रहता है। वसन्त तो मानो इस चक्रका एक आरा है। परंतु वसन्तका महत्त्व इसीमें है कि इससे प्राणबल और तेज आता है। इससे जीवन-शक्ति बढ़ती है।

राष्ट्रपरक भावार्थ

वसन्त अर्थात् प्राणियोंके सुखसे निवास करनेयोग्य समय। समाजमें देव, विद्वान् और वसु विभागाध्यक्ष त्रिपुट तीन संघोंमें विभाजित होते हैं। धर्म-कर्तव्य-विधान-सभा, कार्यकारिणी समिति और न्याय-संस्था—ये तीनों स्तुत प्रकट प्रशंसित होते हैं। इसके उपरान्त रथन्तर अर्थात् सैन्यबल अपने तेज, पराक्रम, प्रभावसे राष्ट्रमें शान्ति स्थापित करता है। इन्द्र राष्ट्रपतिमें हवि, खाद्य, साधनोंद्वारा स्थिरता बनी रहती है। राज्यके अधिकारी वसु प्रजाको बसानेवाले सुखदायक होते हैं। देव, विद्वान् परोपकारी जन ज्ञानका प्रकाश देते रहते हैं। वेदने अन्यत्र ठीक ही कहा है—

यत्र ब्रह्म च क्षत्रं च सम्यञ्चौ चरतः सह।
तं लोकं पुण्यं प्रज्ञेषं यत्र देवाः सहाग्निना॥

शिक्षापरक भावार्थ

वैदिक कालमें परिपाटी थी कि वसन्त ऋतुमें देव विद्वान् गुरुकुल आदि शिक्षा-संस्थानोंमें एकत्रित होते थे। उस सम्मेलनके दीक्षान्त समारोहमें वसु अर्थात् स्नातक ब्रह्मचारियोंको त्रिवृत् उपाधियाँ वसु, रुद्र और आदित्य नामक बाँटी जाती थीं। यह त्रिवृत् क्रम वेदाध्ययनकी योग्यतानुसार होता था। इस प्रकार स्नातकोंकी स्तुति-प्रशंसा हुआ करती थी। त्रिवृत् नामक बृहत् यज्ञ हुआ करता था, जिसमें रथन्तर नामक सामगानके स्तोमसे सम्मेलनकी शोभा बढ़ती थी। सामगानके रथन्तर होते थे, जिनमें यथाक्रम यथाविधि उदात्त, अनुदात्त, स्वरित, सम, विलम्बित, द्रुत, स्वर-ताल-लय आदिका विशेष आनन्द रहता था। यह सामगान था। इसमें सात्त्विक आध्यात्मिक तेज होता था। इन्द्र राष्ट्रपति इन्द्रासनसे सुशोभित हविरूप उपाधियाँ वितीर्ण करता था, जिससे स्नातकोंको मान्यता मिलती थी। यह वेदका निर्दिष्ट सिद्धान्त है। यह इतिहास नहीं है, बल्कि सदा ऐसा होता रहा है और होता रहेगा। वसन्तकी ऐसी महिमा है, जिसे वेदने बड़ी सुन्दरतासे साररूपमें वर्णन कर दिया है। यह अभिप्राय काल्पनिक नहीं है। इसके आधार प्रतिष्ठित भाष्य हैं, जिनका हम आदर करते हैं। इसे विद्वान् समझ लेंगे। स्थानाभावसे हमने उन भाष्योंको अक्षरशः उद्धृत करना अनिवार्य नहीं समझा।

तीर्थ-दर्शन—

तिरुअनन्तपुरम्का श्रीपद्मनाभ स्वामी मन्दिर

(डॉ० श्री बी०एल० पिल्लै, एम०ए०, एम०फिल०, पी-एच०डी०)

तिरुअनन्तपुरम् 'ईश्वरकी अपनी धरती'के नामसे प्रसिद्ध केरल-प्रान्तकी राजधानी है। इसे तिरुवनन्दपुरम् और त्रिवेन्द्रम् भी कहते हैं। 'तिरु' शब्द लक्ष्मी या ऐश्वर्यका वाचक है और पौराणिक वर्णनके अनुसार पहले यह क्षेत्र अनन्तवनम् नामसे प्रसिद्ध था, अतः यह तिरुअनन्तपुरम् कहा जाने लगा। तिरुअनन्तपुरम्का अर्थ है भगवान् अनन्तका नगर अर्थात् जहाँ भगवान् अनन्त निवास करते हैं। अंग्रेजोंके शासनकालमें यह नगर त्रिवेन्द्रम् कहा जाता था, परंतु १९९१ से इसका नाम राज्यसरकारकी ओरसे तिरुअनन्तपुरम् रख दिया गया।

तिरुअनन्दपुरम्—तीन शब्दोंसे मिलकर बना है—तिरु+अनन्द+पुरम्=तिरुअनन्दपुरम्। तिरुसे तात्पर्य ऐश्वर्य या पुण्य, अनन्द यानी आनन्द और पुरम्का अर्थ है पुर या नगर। इस प्रकार तिरुअनन्दपुरम्का तात्पर्य यह है आनन्द और ऐश्वर्य बरसानेवाला नगर। यहाँका पद्मनाभन्-मन्दिर विश्वप्रसिद्ध है। मन्दिर भगवान् पद्मनाभन् (भगवान् विष्णु)-को समर्पित है, जो अनन्द (अनन्त) नामक नागपर शयन करते हैं।

श्रीपद्मनाभ स्वामी मन्दिर भारतके सबसे महत्त्वपूर्ण वैष्णव मन्दिरोंमेंसे एक है, जो केरलके आश्चर्योंमें-से एक है। यह विश्वविख्यात देवस्थान, तिरुअनन्तपुरम्की ही नहीं, पूरे विश्वमें केरलकी ख्याति प्रसारित करता है। यह स्थान पुण्यभूमि भारतके भालपर शुभ तिलकके सदृश है।

केरल, भारतके दक्षिण-पश्चिम कोनेमें स्थित एक राज्य है। नारियलके पेड़को केरलकी भाषा मलयालममें 'केरम्' कहते हैं। अतएव नारियलके बगीचोंका स्थान होनेसे इसे 'केरल' नाम मिला है। इस राज्यकी सीमा एक ओर अरब महासमुद्र, तो दूसरी और तीसरी सीमा कर्नाटक एवं तमिलनाडुसे जुड़ी है। इसकी सीमा उत्तरमें कुम्बलाके निकट अनन्दपुरम् मन्दिरसे थोड़ी दूर कर्नाटकके मंगलूरुके पासकी तलप्पाडी है। दूसरी ओर दक्षिणमें संसार-प्रसिद्ध श्रीपद्मनाभस्वामी मन्दिरके आगे पारशालाके समीप कलियिक्काविला है।

ऐतिहासिक मन्दिर— श्रीपद्मनाभस्वामी मन्दिर एक ऐतिहासिक मन्दिर है, यह विख्यात मन्दिर अपनी प्राचीनता एवं वैभवके लिये प्रसिद्ध है। यह एक सौ आठ दिव्य

वैष्णव स्थानमेंसे एक है।

मुख्य देवता—पद्मनाभस्वामी मन्दिरके मुख्य देवता भगवान् विष्णु हैं। यहाँ गर्भगृहमें महाविष्णुकी विशाल प्रतिमा विद्यमान है। यह मूर्ति शयनमुद्रामें है। महाविष्णु अनन्थन या अनन्त (आदिजन) नामक एक नागपर लेटे हुए हैं। मलयाली इसे अनन्द शयनम् (अनन्तशयनम्) कहते हैं। इस मन्दिरमें पद्मनाभस्वामीके अतिरिक्त नरसिंहमूर्ति और समतुल्य महत्त्वमें भगवान् श्रीकृष्णकी मूर्तियाँ भी हैं।

त्रावणकोर राजवंश—पुराने जमानेमें तिरुवनन्तपुरम् और उसके आसपासका क्षेत्र तिरुविताँकूर (त्रावणकोर) राजवंशके अधीन था। महाप्रभु श्रीपद्मनाभस्वामी त्रावणकोर राजवंशके पारिवारिक देवता हैं। विष्णुभक्त त्रावणकोर महाराजा श्रीअनिषम तिरुनाल वीरबाल मार्तण्ड (मार्थण्ड) वर्माने अपना सम्पूर्ण राज्य भगवान्‌को समर्पित किया। इसके बाद त्रावणकोर राजवंशके शासकोंको श्रीपद्मनाभदासके नामसे जाना जाने लगा। ये राजा भगवान् पद्मनाभके प्रतिनिधि बनकर उसके लिये मात्र शासन कर रहे थे। राज्य-पालन केवल भगवान्‌के लिये ही हुआ करता था।

भगवान् विष्णुकी नींद— पौराणिक कथाओंसे ज्ञात है कि अनन्द शयनका तात्पर्य पालाषिमें अनन्द (अनन्त) नामक नागपर भगवान् श्रीविष्णुकी नींद है। पालाषि वैकुण्ठमें स्थित है। यहाँ महाविष्णु सतत आनन्दके साथ सो रहे हैं। यह असाधारण योगनिद्रा है, क्योंकि वे ब्रह्माद्वारा बनाये गये ब्रह्माण्डकी रक्षा करते हैं। अनन्द (अनन्त नाग)-को काल—समयके प्रतीकके रूपमें माना जा सकता है, तो विष्णुको कालातीत भगवान्‌के प्रतीकके रूपमें माना जा सकता है।

उत्पत्ति—श्रीपद्मनाभस्वामीके मन्दिरकी उत्पत्तिके प्रमाण अनुपलब्ध हैं। किसी भी विश्वसनीय ऐतिहासिक प्रमाणसे यह निर्धारित करना सम्भव नहीं है कि श्रीपद्मनाभस्वामीकी मूल मूर्ति कब और किसके द्वारा इस मन्दिरमें संरक्षित की गयी थी। आराध्य ग्रन्थ श्रीमद्भागवतसे मालूम होता है कि बलरामने इस मन्दिरका दर्शन किया, इधरके विस्तृत पद्मतीर्थमें स्नान किया और पूजा-अर्चना की। केरलके प्रसिद्ध इतिहासकार रवि वर्माने अपना मत इस प्रकार प्रकट किया है कि इस मन्दिरकी स्थापना कलियुगके पहले दिन (५००० साल पहले) हुई है।

पद्मनाभस्वामीकी मूर्ति—पद्मनाभस्वामी मन्दिरमें भगवान् विष्णुकी मूर्ति महत्त्वपूर्ण है, जो अठारह फीट लम्बी है। पद्मनाभस्वामीकी यह मूर्ति सख्त गुड़से बनी है। इसलिये अभिषेक करना असम्भव है, क्योंकि अभिषेक किया जायगा तो वह गल जायगी। समाधान-स्वरूप अभिषेकके लिये एक और मूर्ति यहाँ स्थापित है। इस मूर्तिपर अभिषेक किया जाता है।

पद्मनाभस्वामी मन्दिरकी मूर्ति इतनी विशाल है

कि इसे तीन द्वारोंसे देखना पड़ता है। श्रीभगवान्‌का रूप तीन भागोंमें देखा जा सकता है। इस मूर्तिके श्रीमुखका दर्शन एक द्वारसे, वक्ष:स्थल तथा नाभिके दर्शन मध्यद्वारसे और चरणोंके दर्शन तीसरे द्वारसे होते हैं। श्रीभगवान्‌का दाहिना हाथ चिन्मुद्राके साथ एक शिवलिंगपर स्थित है। श्रीपद्मनाभकी नाभिसे निकलनेवाले कमलपर ब्रह्माजी विराजमान हैं। श्रीपद्मनाभ स्वामी मन्दिर एक मन्दिर है, किंतु यहाँ ब्रह्मा, विष्णु और शिव—इन तीनों देवताओंका संगम है। मूर्तिके पास श्रीदेवी और भूदेवीकी भी प्रतिमाएँ हैं। यहाँ दीपक जलते रहते हैं और उन्हींके प्रकाशमें भगवान्‌के दर्शन होते हैं।

परम्परागत विश्वास यह है कि दिवाकर मुनि तथा

बिल्वमंगमलम् स्वामी (सन्त)-ने पहले-पहल इरिप्पा नामक एक पेड़के नीचे भगवान्का दर्शन किया था। इसलिये पहले यहाँकी भगवत्-मूर्ति इरिप्पा पेड़की लकड़ीसे बनी थी। यह अठारहवीं शतीमें एक भयानक आगमें पड़कर राख हो गयी। तदनन्तर वर्तमान मूर्तिको इसके बगलमें स्थपित किया गया था।

शालग्राम—श्रीपद्मनाभ-मन्दिरमें भगवान्की मूर्तिमें शालग्राम नामके कई विशेष पत्थर लगे हुए हैं। शालग्राम नेपालमें गण्डकी नदीके किनारे पाये जानेवाले पत्थर हैं। मन्दिरमें पद्मनाभस्वामीकी मूर्ति शालग्रामसे बनायी गयी है, जिसे महान् माना जाता है। इसकी पूर्णताके लिये लगभग बारह हजार शालग्रामकी आवश्यकता थी। शालग्रामको भगवान् विष्णुका अवतार कहा जाता है। इन पत्थरोंका उपयोग आमतौरपर भगवान् विष्णुकी मूर्ति बनानेके लिये किया जाता है। भक्तोंका विश्वास है कि ये पत्थर महाविष्णुके कई रूपोंका प्रतिनिधित्व करते हैं। इन शालग्राम शिलाओंको गुड़से बने 'कटुशर्करयोग' नामक मिश्रणविशेषमें रखकर वर्तमान श्रीविग्रह तैयार किया गया।

दशावतार—पद्मनाभ स्वामी मन्दिरकी वास्तुकला तमिलनाडुके मन्दिरोंसे मिलती-जुलती है। तमिल रीति-शैलीमें निर्मित यह सात मंजिला मन्दिर तिरुवनन्तपुरम् शहरका प्रतीक भी माना जाता है। मन्दिरका शिखर कई ग्रेनाइट मूर्तियोंसे सजा है। पहली मंजिलमें भगवान् विष्णुकी मूर्तियाँ हैं। इसके अतिरिक्त मन्दिरमें मत्स्य, कूर्म, वराह, नरसिंह, वामन, परशुराम, श्रीराम, बलराम, श्रीकृष्ण और कल्किके दस अवतार भी स्थापित हैं।

तृप्पटिदानम् और पद्मनाभदास—तृप्पटिदानम् मलयालम शब्द है, जिसका अर्थ है (तृ=तव या तुम्हारे, पटी=द्वार या चौखट, दानम्=दान या समर्पण) शरीर-आत्मा आदि सब कुछ भगवान्के सामने समर्पण। त्रावणकोरके महाराज अनिषम तिरुनालने ३ जनवरी १७५० को अपने साम्राज्य एवं सर्वस्वको अपने परिवारके देवता श्रीपद्मनाभस्वामीके परम पवित्र चरणोंमें समर्पित किया। यह अपूर्वतम दान तृप्पटिदानम् नामसे जाना जाता है। इस समर्पणके बाद उन्हें श्रीपद्मनाभदास महाराज श्रीअनिषम तिरुनाल मार्तण्ड वर्माके नामसे जाना गया। तत्पश्चात् इनके वंशके राजाओंने श्रीपद्मनाभदासकी उपाधि लेते हुए अपने कुलदेवता (पारिवारिक आराधना मूर्ति)-के परम सेवकके रूपमें राज्यपर शासन किया। राजा और राज्यकी ओरसे हुआ यह सर्वस्व समर्पण (महादान)-'तृप्पटिदानम्' इतिहास-प्रसिद्ध है। इस दानके बाद त्रावणकोरके राजाके नाममें 'श्रीपद्मनाभदास' उपाधि जुड़ गयी।

शिखर, सुनहरे कलश और खिड़कियाँ—केरलके अन्य मन्दिरोंसे अलग पद्मनाभस्वामी मन्दिर एक लम्बे टॉवर या शिखरके रूपमें बना हुआ है। इस मन्दिरमें सात अद्भुत मंजिलें हैं। तमिलनाडुके तंजावुरकी विशेष शैलीमें बने शिखरके निर्माणके लिये एक सौ फीट ऊँचे कृष्णशिलाका उपयोग किया गया था। पूर्वी शिखरमें सात मंजिलें, यहाँ सात सुनहरे कलश और सात खिड़कियाँ भी हैं। अन्य शिखरोंको दो-मंजिलाके साथ साधारण केरलीय शैलीमें बनाया गया है। पद्मनाभस्वामी-मन्दिरका एक और अनुपम आकर्षण दीवारोंपर मूर्तियोंके चित्र हैं। दीवार-चित्रोंको मलयालममें चुमरचित्रम् कहते हैं। यहाँ मन्दिरके पीछे भगवान् शिवका भित्ति या चुमर (दीवार) चित्र है, यह केरलका सबसे बड़ा भित्तिचित्र है।

सबसे धनी मन्दिर—श्रीपद्मनाभस्वामी-मन्दिर विश्वके सबसे धनी खजानोंसे युक्त मन्दिरोंमेंसे एक मन्दिर माना जाता है। मन्दिरका सबसे बड़ा आकर्षण इसकी अमूल्य निधि भी है। यह निधि (सम्पत्ति) रखनेवाली जगहको मलयालम भाषामें निलवरा (मिट्टीके नीचे बनाया गया कमरा या तहखाना) कहते हैं। यहाँ कुल मिलाकर आठ निलवरा हैं, इन्हें ए, बी, सी, डी, ई, एफ, जी और एच नाममें विभाजित किया गया है, लेकिन ये कमरे अभीतक पूरी तरहसे खुल नहीं पाये हैं। भक्तजनोंका विश्वास यह है कि मनुष्य इन्हें नहीं खोल

सकते हैं। भक्तोंमें यह विश्वास भी है कि यह श्रीभगवान् पद्मनाभका अपना कमरा है। कहा जाता है कि इस कमरेकी तिजोरीमें सर्प हैं। विश्वास है कि इस तिजोरीके संरक्षक श्रीनरसिंहस्वामी हैं। तिजोरीकी पूर्व दीवारपर सर्पके खतरेकी सूचनारूप दो सर्प अंकित हैं।

पद्मनाभस्वामी-मन्दिरमें श्रीचक्र-जैसे खजाने रखे गये हैं। छठा कक्ष विशिष्ट है, जो कक्षके आन्तरिक कक्षोंसे बना है। सन् १९३१ में छठे कक्षके अन्दरका पहला कक्ष खोला गया। कहा जाता है कि जब १९०८ में छठा मुख्य-कक्ष खोला गया था, तब उसमेंसे उग्र विषैले सर्प बाहर निकले थे। सैकड़ों श्रीपद्मनाभ-भक्तोंका विश्वास है कि इस कक्षको खोलनेसे भगवान्का प्रकोप होगा। यह विश्वास भी है कि यह एक अतीव रहस्ययुक्त कमरा है; देवता, ऋषि एवं यक्ष अदृश्य रूपसे श्रीपद्मनाभकी सेवा करते हुए इस कमरेमें रहते हैं। इस मन्दिरसे अबतक १.५ लाख करोड़ रुपयेसे अधिक मूल्यकी कीमती चीजें मिली हैं। अधिकारियोंका विश्वास यह है कि यदि शेष तिजोरियोंको खोला जाता है, तो बहुत अधिक कीमती सामान होंगे।

शिवेलिप्पुरा और ओट्टकलमण्डपम्— श्रीपद्मनाभस्वामी-मन्दिरकी सबसे बड़ी विशेषताओंमें शिवेलिप्पुरा (श्रीबलीके घर) और ओट्टकलमण्डपम् (एक पत्थरसे बना हुआ मण्डप) भी स्थान पाता है। पूर्व दिशामें स्थित शिवेलिप्पुरा एक विशाल भवन है। यह मण्डप करीब ४०० फीट लम्बा और २०० फीट चौड़ा है। इसके लिये पत्थर आन्ध्रप्रदेशके तिरुपतिसे लाये गये थे। छ: महीनेमें काम पूरा करनेके लिये ४००० बढ़ई, ६००० श्रमिक और १०० हाथी लगे थे। मन्दिरका एक और आकर्षण शिवेलिपुरा (श्रीबलीधर)-में स्थापित ग्रेनाइटसे बने ३६५ स्तम्भ हैं।

सप्तस्वर-मण्डपम्— सप्तस्वरमण्डपम् कुलशेखर-मण्डपम् तथा अय्यराम कलमण्डपम् नामसे भी जाना जाता है। इस मण्डपके सारे खम्भे सोनेसे ढके हुए हैं। विशेषता यह है कि यदि आप चारों ओरके खम्भोंको छूते हैं, तो आप षड्ज, ऋषभ, गान्धार, मध्यम, पंचम, धैवत और निषाद—भारतीय संगीतके सात स्वर सुन सकते हैं। इसी कारण इसे सप्तस्वरमण्डपम् नाम मिला है।

ध्वज— श्रीपद्मनाभस्वामी-मन्दिरमें दो झंडे हैं। पद्मनाभस्वामीके चरणोंमें सुनहरा ध्वज है और श्रीकृष्ण-भगवान्के चरणोंमें रजत ध्वज है। चूँकि दोनों देवता भगवान् विष्णुके ही स्वरूप हैं, इसलिये दोनों ध्वजाओंपर गरुड़का चिह्न अंकित है।

भगवान् श्रीपद्मनाभ, उत्तरसे दक्षिणकी ओर मुख करके शयन करते हैं। वेदव्यास और अश्वत्थवुकी मूर्तियाँ भी हैं। दोनों मूर्तियाँ धातुसे बनी हैं।

नालम्बलम (बाहरके चार दीवार)-के बाहर, उत्तर-पूर्वकी ओर, भगवान् शिवका एक मन्दिर है, उन्हें इस मन्दिरका संरक्षक माना जाता है।

मुरजपम्— मुरजपम् श्रीपद्मनाभमन्दिरमें सम्पन्न होनेवाला एक विशेष त्योहार है। मुराका अर्थ आठ दिनका और जपम् जप होता है। यह वैदिक मन्त्रोंसे युक्त विशेष पूजा-विधि है। त्रावणकुर राज्यमें न्याय-नीतियुक्त शासनके लिये, युद्ध जीतनेके लिये, युद्ध-मैदानमें, देश-विस्तारसे घटित दु:खों तथा पापोंको दूर करनेके प्रायश्चित्तके रूपमें मुरजपम्का आचरण परम्परासे चलता आ रहा है। यह मन्त्र-जप श्रीपद्मनाभस्वामीकी सन्तुष्टिके लिये होनेवाला बलिदान है। महाराजा मार्तण्ड वर्माने इसका शुभारम्भ किया था। मुरजपम्के अवसरपर ऋग्वेद, यजुर्वेद तथा सामवेद आदि वेदोंके मन्त्र और सहस्रनामका मुख्यरूपसे जप होता है। इस तन्त्र-कर्ममें दो सौसे ज्यादा तन्त्रीवर्य भाग लेते हैं। यह विशिष्ट मन्त्रोच्चारण छ: सालमें एक बार होता है। सभी भक्त इसमें भाग ले सकते हैं।

अन्तमें भक्तवत्सल भगवान् श्रीपद्मनाभके चरणोंमें निवेदन है कि वे ही हमारी आशा, आकांक्षा और आश्रय हैं, वे ही हमारे आराध्य हैं, वे हमारे-तुम्हारे ही नहीं, सर्व चराचरोंपर अजस्त्र कृपा-कटाक्ष—अनुग्रह बरसाते रहें।

कबन्ध-मोक्ष

[संतका शाप भी अनुग्रह ही होता है]

(श्रीसुदर्शनसिंहजी 'चक्र')

अकथ्य दारुण स्थिति—जिसने कभी कष्ट सहा है, कभी निर्जन अथवा शत्रुओंके प्रदेशमें एकाकी पड़ा है, वह भी कठिनाइयोंसे ही कल्पना कर सकता है। घोर वन, कहीं मुनियोंके आश्रम भी समीप नहीं। मायावी राक्षसोंका प्रदेश और अपहृता भार्याका अन्वेषण करना था। श्रीराम बार-बार वियोग-विह्वल होते थे।

कहीं भी वृक्षके नीचे रात्रि काट देनी थी। श्रीराम अब पत्र-शय्या भी देखकर 'हा सीते! हा सीते!' पुकारने लगते थे। रात्रिमें निद्रा नहीं लेते थे। दिनमें विश्रामका नाम नहीं। लक्ष्मण किसी प्रकार भी अग्रजको कन्द-मूल या फल खिला नहीं सके। स्वयं लक्ष्मण तो जब वनमें आये तबसे निद्रा, क्षुधाजयी हो गये थे, किंतु अपने आराध्य अग्रजका अनाहार उनके हृदयको मथे डालता था।

जटायुने कहा था—'श्रीजानकीको दशग्रीव आकाश-मार्गसे दक्षिण ले गया है।' यह कोई पता था? कोई चोर कुछ चुरा ले जाय, वह अपने घर ही ले जाकर रखेगा, यह क्या निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है? रावण समुद्रके मध्य स्वर्णपुरी लंकामें रहता है; किंतु उस राक्षसाधिपके अनुचर, साथी, सहानुभूति रखनेवाले तो संसारमें भरे पड़े हैं। पातालमें दैत्य, दानव हैं। पृथ्वीपर ही अनेक राक्षस हैं। कौन कह सकता है कि रावणने सीताको कहाँ ले जाकर छिपाया है। दक्षिण गया वह जनस्थानसे; किंतु कहाँ दक्षिण? कितनी दूर दक्षिण? पंचवटीसे दक्षिण तो भारतका पूरा दक्षिणी प्रदेश पड़ा है और उसमें बहुत पर्वत हैं। सघन अरण्य हैं। आगे जाकर रावण आकाश-मार्गसे कहीं किसी ओर मुड़ा या नहीं? वह कहीं उतरकर किसी वनमें, किसी गुफामें, किसी अपने मित्रके समीप सीताको छोड़ गया या नहीं? इन प्रश्नोंका उत्तर कौन देगा?

इसी दशग्रीवने विवाहसे पूर्व ही श्रीराम-माता कौसल्याका अपहरण किया था। तब तो वह उन्हें लंका नहीं ले गया। एक पेटिकामें बन्द करके महामत्स्यको दे गया था। अब वह ऐसा कुछ नहीं करेगा, इसका कोई आश्वासन है?

कहीं समीप ही रावणने सीताको न छिपाया हो। कोई सर्वज्ञ ऋषि मिल जाय तो कदाचित् जानकीका पता दे सके। अगस्त्यजीका आश्रम पंचवटीसे उत्तर था। दशग्रीव दक्षिण गया था, अतः दोनों भाई दक्षिण जा रहे थे। अब दक्षिण केवल मतंगाश्रम था। उसी ओर बढ़ रहे थे। कदाचित् कोई ऋषि कुछ बता सके। वैसे मायावी रावणकी चेष्टा जान लेना ऋषियों-मुनियोंके लिये कठिन था। वह ध्यानके लिये अगम्य कर देना, जाननेवाला तन्त्रशास्त्रका प्रकाण्ड पण्डित—लेकिन आशाके बिना प्रयत्न कैसे चले। दोनों भाई चलते जा रहे थे।

दण्डकारण्यकी सीमा समाप्त हो गयी। क्रौंचारण्य भी पार हुआ। मतंग-आश्रमसे पूर्वका अत्यन्त दुर्गम, जनहीन-प्राणिहीन प्रदेश। पशु-पक्षी ही नहीं, राक्षस भी इसमें प्रवेशका साहस नहीं करते थे, लेकिन दुर्गम प्रदेशमें सीताके मिलनेकी सम्भावना अधिक हो सकती है। दोनों भाइयोंने उस अरण्यमें प्रवेश किया।

एक ओरसे अन्धड़ चलनेका शब्द आया। वृक्ष जैसे टूट रहे हों। दीर्घाकार, भयानकमुखी, लम्बोदरी, मुक्तकेशा, कटिमें व्याघ्रचर्म लपेटे एक राक्षसी दौड़ती आयी। उसने दोनों करोंमें मृग, व्याघ्र पकड़ रखे थे। उन्हें कच्चा ही चबा रही थी। उसका मुख, शरीर रक्तसे लथपथ था। दोनों भाइयोंको देखते ही दाहिने हाथका मृग मुखमें डाला और उसने अन्धड़के समान दौड़कर लक्ष्मणको उठा लिया मुट्ठीमें।

'प्रियतम! डरो मत! मेरा नाम अयोमुखी है।' उसने रक्त टपकते भयानक दाढ़ोंवाले मुखको मटकाया—'इस काननमें मेरे साथ विहार करो। केवल यहाँसे आगे दक्षिण मत जाना। मैं भी नहीं जाती। मेरा कबन्ध पकड़ पाये, तो मुझे भी मुखमें डाल ले।'

लक्ष्मणने अविलम्ब खड्ग खींच लिया। उस भयानका, लौहकृष्णवर्णा अयोमुखीकी नासिका, कर्ण

और पयोधर काट दिये। लक्ष्मणको छोड़कर चिल्लाते हुए वह भाग गयी।

'लक्ष्मण! मेरी वामभुजा, वामनेत्र फड़क रहे हैं।' श्रीरामने अनुजसे कहा—'कोई अनिष्ट आसन्न है। धनुष ज्यासज्ज करो शीघ्र।'

अभी श्रीरामका वाक्य पूरा भी नहीं हुआ था कि पक्षी उच्च स्वरसे चीत्कार करते वृक्षोंपरसे उड़े। एक अकल्पित विशाल हाथ आया और उसने लक्ष्मणको मुट्ठीमें पकड़कर उठा लिया। वह हाथ जैसे किसी बहुत बड़े वटवृक्षकी शाखा अथवा अजगरका शरीर हो।

'आर्य! आप मेरी बलि देकर शीघ्र दूर भागें! लक्ष्मणने पुकार कहा—चिल्लाकर अग्रजसे कहा; क्योंकि वह हाथ उठाकर लिये जा रहा था—'आप अवश्य श्रीविदेहनन्दिनी और राज्यको पायेंगे।'

'लक्ष्मण! खड्ग' श्रीराम झपटे। उन्होंने छोटे भाईके हाथोंसे खड्ग झपट लिया। इन्द्रने जो खड्ग महर्षि अगस्त्यके यहाँ रखा था और वहाँसे श्रीरामने लिया था, वह लक्ष्मणके समीप ही रहता था। राक्षसी अयोमुखीके नाक-कान काटकर अभी लक्ष्मण उस खड्गको स्वच्छ करके कोशमें रखनेका अवसर नहीं पा सके थे। थोड़ी ही दूर अभी दक्षिण बढ़े थे कि यह विपत्ति आ गयी। लेकिन खड्ग लेते-न-लेते वैसे ही दूसरे हाथने श्रीरामको भी पकड़ लिया था।

'इसकी बाहु काट दो।' श्रीरामने उस हाथको कलाईके कुछ ऊपरसे काट दिया और दौड़कर खड्ग लक्ष्मणको पकड़ाया किसी प्रकार, क्योंकि दूसरा हाथ इतना ऊपर उठ गया था कि उसे वे स्वयं नहीं काट सकते थे। लक्ष्मणने भी वैसे ही हाथको काटकर अपनेको मुक्त किया।

'तुम दोनों कौन हो?' अब मेघ-गर्जनाके समान शब्द सुनायी पड़ा। दोनों भाइयोंने आश्चर्यसे देखा कि दूर, वृक्षोंके मध्य, सभी वृक्षोंसे बहुत ऊँचा पर्वताकार कबन्ध (मस्तकहीन धड़) खड़ा है। शब्द उसके उदरसे आ रहा है; क्योंकि उसका मुख उसके पेटमें है। इतना विशाल होनेपर भी उसकी भुजाएँ इतनी बड़ी हैं कि वह उन्हें मोड़कर मस्तकपर रखे, तब भी उसकी कुहनी उसके पैरोंके समीप पृथ्वीसे लगती है। अब कलाइयोंके पाससे हाथ कट जानेपर उसने अपने बाहु मस्तकपर रख लिये हैं और अपने ही रक्तमें स्नान कर रहा है।

'मैं अयोध्याके चक्रवर्ती नरेश महाराज दशरथका पुत्र राम।' श्रीरामने उच्चस्वरमें उत्तर दिया—'मेरे साथ मेरे अनुज ये लक्ष्मण।'

'ओह! मेरे उद्धारकर्ता आ गये?' कबन्धने मानों प्रसन्न होकर कहा—'आप दोनों समीप आ जाओ, मैं गन्धर्वराज उपबर्हण हूँ।'

'तुम्हारी यह अवस्था?' दोनों भाई उसके समीप तीव्रगतिसे जाते हुए बोले। वे देख रहे थे कि उसने अपनी बाहुओंसे आघातका कोई प्रयत्न नहीं किया है। स्थिर खड़ा है वह।

मेरे संगीतसे सन्तुष्ट होकर सृष्टिकर्ताने मुझे समस्त प्राणियोंसे अवध्य होनेका वरदान दिया। उसने आत्मकथा सुनायी—'इस वरदानने मुझे मदान्ध बना दिया। महर्षि स्थूलशिरा अतिशय दयालु हैं। सम्भवतः इसीलिये उन्होंने इतना कुरूप अंगीकार किया है। अनेकोंका अहंकार मिटाया है उन्होंने। वे एक दिन देवराजकी सभामें पधारे। मैं उनका शरीर तथा उचककर अटपटे ढंगसे उनका चलना देखकर खुलकर हँस पड़ा।'

'अशिष्ट! तू सुरसभामें आसन पानेयोग्य नहीं है।' क्रुद्ध ऋषिने शाप दे दिया—'अभी राक्षस हो जा।'

मैं तत्काल राक्षस हो गया। राक्षस देह ही नहीं हुआ, बुद्धि भी राक्षसी हो गयी। कबन्धने बतलाया—'देवराज इन्द्रको पकड़कर निगल लेने झपट पड़ा। देवराजको दोष नहीं दिया जा सकता। उन्होंने अपनी रक्षाके लिये मेरे मस्तकपर वज्रसे प्रहार किया। इससे मैं कबन्ध बन गया। मेरा मस्तक मेरे धड़के भीतर प्रविष्ट हो गया।'

'सृष्टिकर्ताका वरदान मेरे लिये शाप बन गया। मैं मर सकता नहीं था और अब मस्तक धड़में चले जानेसे देखने, सुनने, बोलने सबमें असमर्थ दयनीय हो गया।' कबन्धने आगे कहा—'देवराज ऐसे प्राणीको अमरावतीमें कहाँ रखते? मैं स्वयं कहीं जाता कैसे? अतः उन्होंने कह दिया कि मेरे उदरमें मेरा मुख प्रकट हो जाय।'

'आप इतने निष्करुण नहीं हो सकते देवराज!' कबन्ध कह रहा था—'मैंने हाथ जोड़कर प्रार्थना की कि

मेरे आहारकी कोई व्यवस्था कर दें। अन्यथा अनन्तकालतक क्षुधार्त रहूँगा।'

'जैसे ही तुम पृथ्वीपर पहुँचोगे, तुम्हारी भुजाएँ एक योजन विशाल हो जायँगी।' इन्द्रने स्वर्गकी सुरक्षा रखते हुए वरदान दिया—'अपनी भुजाओंकी परिधिमें आये प्राणियोंको तुम पचा सकोगे।'

'देव! इस अधमका कभी उद्धार भी होगा? मैंने महर्षिजीसे प्रार्थना की।'

'जब त्रेतामें परात्पर पुरुष श्रीराम अवतीर्ण होंगे, वे अनुजके साथ वनमें स्वयं तुम्हारे समीप आयेंगे।' महर्षिने कृपा की—वे जब तुम्हारे हाथ काट देंगे, तुमको अपना गन्धर्व-शरीर प्राप्त हो जायगा। तबतक तुम दक्षिण भारतमें क्रौंचारण्यसे कुछ दक्षिण निवास करो।'

महर्षिका अनुग्रह—वे शाप न देते, एक गन्धर्वको आपका स्पर्श प्राप्त होता? कबन्ध करुण स्वरमें कह रहा था—'अबतक मेरा सिर मेरे उदरमें है। मैं प्राणियोंको कठिनाईसे पकड़ पाता था; क्योंकि लेटे बिना ऊपर नहीं देख सकता। पूरा घूमे बिना मैं नहीं देख सकता; किंतु आप देख सकते हैं। मेरे पीछे कहीं समीप ही एक गर्त है। उसमें काष्ठ डालकर मुझे जला दें। मेरे कटे हाथ भी उसीमें फेंक दें तो मैं इस अधमरूपसे परित्राण पाऊँ।'

अब यह प्राणी अत्यन्त दयनीय हो गया था। हाथ कट जानेसे अब आहार भी पकड़ नहीं सकता था। ब्रह्माके वरदानसे अस्त्र-शस्त्रसे अवध्य था। अत: इसे जीवित जला देना स्वयं इसीपर दया करना था—आवश्यक था।

'मैं अवश्य तुम्हारा दाह-कर्म कर दूँगा।' श्रीरामने आश्वासन दिया। अग्रजका संकेत पाते ही लक्ष्मण कबन्धके पीछे थोड़ी दूरीपर जो महागर्त था। उसमें आस-पाससे काष्ठ डालने लगे। श्रीरामने कबन्धसे पूछा—'रावण वनमेंसे मेरी पत्नीको अपहरण कर ले गया। उसने वैदेहीको कहाँ रखा? स्वयं वह कहाँ होगा?'

'शाप-दोषसे मेरी बुद्धि भ्रष्ट हो गयी है। मैं भोजनके अतिरिक्त, कुछ सोच नहीं सकता हूँ।' कबन्धने कहा—'जब आप मुझे दग्ध कर देंगे, मुझे अपना गन्धर्व-देह प्राप्त हो जायगा। तब मैं आपकी जो सहायता कर सकूँगा, अवश्य करूँगा।'

लक्ष्मणने काष्ठ एकत्र कर दिया उस गर्तमें। काष्ठ-मन्थन करके ही अग्नि प्रकट की। केवल कबन्धके कटे हाथ दोनों भाइयोंको अग्निमें डालने पड़े। वह तो स्वयं जाकर उस ज्वालामें कूद पड़ा। आश्चर्य—न दुर्गन्धि, न चिटखनेका कोई शब्द, कबन्धका शरीर ऐसे जलने लगा, जैसे वह प्राणिभक्षी राक्षसका देह न होकर घृतपिण्ड हो। अन्ततः वह गन्धर्व था। क्षणोंमें राक्षसदेह भस्म हो गया और उस ज्वालासे दिव्य देहधारी, परम सुन्दर रत्नाभरणभूषित गन्धर्व प्रकट हुआ।

दोनों भाइयोंको प्रणाम करके, दोनोंकी परिक्रमा करके गन्धर्व आकाशमें कुछ और ऊपर उठ गया। पृथ्वीका स्पर्श तो इस देव-शरीरसे वह कर नहीं सकता था। आकाशसे ही बोला—'मर्यादापुरुषोत्तम! आपको मानवकी मर्यादा ही रखनी है तो सुनें। देव, गन्धर्व किसीमें दशग्रीवका विरोध करनेकी शक्ति नहीं है। मैं कोई सक्रिय सहायता करनेमें असमर्थ हूँ। केवल सम्मति दे सकता हूँ।'

मनुष्य छ: उपायोंसे अभीष्ट प्राप्त कर सकता है—१. साहस, २. सन्धि, ३. विग्रह, ४. दुर्ग, ५. सहायक और ६. आश्रय। साहस आप दोनोंमें असीम है; किंतु इस संकटके अवसरपर आपको एक मित्र—सहायक बनाना चाहिये। समानसे ही सन्धि करके उसे मित्र बनाया जा सकता है। गन्धर्वने सुझाव दिया—'वानरराज बालिने अपने अनुज सुग्रीवको निर्वासित कर दिया है। वे चार मन्त्रियोंके साथ आगे पर्वतपर रहते हैं। वे ऋक्षराजके पुत्र कृतज्ञ हैं। उन्हें राक्षसोंका पूरा पता है। उनसे मित्रता कर लो। वानरोंको भेजकर वे सीताका अन्वेषण करा सकते हैं।'

आगे जो पुष्पित वृक्ष है, उससे पश्चिम जाओ। वहाँ अत्यन्त सुन्दर सरोवर है। स्नान करके मेरे राक्षस-शरीरके रक्तसे दूषित गात्र स्वच्छ कर लो। गन्धर्वने अन्तमें कहा—वहाँ समीप ही तुम्हारी दीर्घकालसे प्रतीक्षा करती परम तपस्विनी शबरीका आश्रम है। उसे अपने दर्शनसे अवश्य कृतार्थ करो। ऋष्यमूकपर्वतका एक प्रभाव है, वहाँ स्वप्नमें जो वस्तु मिलती है, जागनेपर वह अवश्य मिल जाती है।

इतना कहकर गन्धर्व अन्तरिक्षमें अदृश्य हो गया।

संत-चरित—

अद्भुत सन्त स्वामी श्रीहंसस्वरूपजी महाराज

(श्रीराजीवजी कक्कड़)

स्वामीजीका जन्म सन् १८५४ ई०में नेपालकी तराईमें स्थित जनकपुरके निकट छोरहिया ग्राममें हुआ था। आपकी माताका नाम श्रीमती रामदेवी एवं पिताका नाम पं० श्रीबलदेवनारायण मैथिल था। जब आपकी अवस्था दो वर्षकी थी, तभी माताका देहान्त हो गया तथा १८५७ ई० की क्रान्तिके चलते आपके पिता आपको लेकर मुजफ्फरपुर बिहार आ गये, परंतु राजनैतिक कारणोंसे वे वहाँसे भी पलायनको विवश हो गये। जानेके पूर्व वे बालकको अपने सुहृद मुंशी कालीचरण कायस्थके परिवारके सुपुर्द कर गये। अतएव आपका लालन-पालन मुंशीजी एवं उनकी धर्मपत्नीने प्राणपणसे किया। लम्बे समयतक आप उन्हें ही अपने वास्तविक माता-पिता मानते रहे। स्वामीजीका संन्यासपूर्व नाम विन्ध्याचल था। इंटर कालेजमें पढ़नेके दौरान आपके एक सहपाठी मित्रकी आकस्मिक मृत्यु हो जानेके कारण आपको घोर वैराग्य हो गया। तत्पश्चात् आप गुरुकी खोजमें बहुत कालतक भटकते रहे। उन्हीं दिनों एक तपस्वीसे आपकी भेंट हुई, जिसने कहा कि तुम सामान्य व्यक्ति नहीं हो, तुम्हें अपने जीवनमें कई महान् कार्य करने हैं।

तत्पश्चात् अपने पालनकर्ता पिताके भारी आग्रहपर आप घर वापस आ गये और कुछ कालपर्यन्त अध्यापन कार्य भी किया। किंतु आपमें वैराग्यका भाव इतना प्रबल था कि तैंतीस वर्षकी अवस्था में वागमती नदीके तटपर, अद्वैतवादी सन्तोंके सान्निध्यमें आपने संन्यास ग्रहण कर लिया तथा आयुपर्यन्त सनातन धर्मकी सेवाका व्रत लिया। कृष्णभक्तिमें आपकी रुचि उत्तरोत्तर बढ़ती गयी। कालान्तरमें आप एक अनन्य कृष्णभक्त सन्तके रूपमें जगत् विख्यात हो गये। अपने ग्रन्थ 'हंसहिंडोल'में आपने संस्कृत, हिन्दी, मैथिल, ब्रज, उर्दू तथा फारसीमें भी भावुक भक्तिप्रवण काव्यकी रचना की है। आपने भगवान् श्रीकृष्णपर अंग्रेजीमें अत्यन्त उत्कृष्ट श्रेणीकी कविताएँ लिखी हैं।

स्वामीजीके प्रवचनोंका संग्रह 'हंसनाद'में मिलता है, जिसमें उन्होंने अत्यन्त सरल भाषामें मूर्तिपूजाकी वैज्ञानिकता, सन्ध्या-वन्दन, अष्टांगयोग-प्राणायाम, त्राटक, शाम्भवी मुद्रा, नादानुसंधान, भगवान्के अवतारोंका रहस्य एवं अन्यान्य गूढ़ आध्यात्मिक विषयोंका प्रतिपादन किया है।

स्वामीजी एक विलक्षण एवं प्रतिभासम्पन्न सन्त थे। इन्होंने लगभग दो सौ स्थानोंपर प्रवचन किये थे। इनकी ओजस्वी वाणी एवं तेजस्वी व्यक्तित्वसे प्रभावित होकर मार्गसे भटके हुए लगभग पन्द्रह हजार हिन्दुओंने सनातनधर्मकी मुख्य धारामें पुनः प्रवेश किया। संस्कृत, हिन्दी, अंग्रेजी, उर्दू, फारसी, मैथिली एवं ब्रजभाषापर आपका पूर्ण अधिकार था। वेदों, उपनिषदों, ब्रह्मसूत्र एवं अन्य गीता, भागवत आदि सत्साहित्यका इन्होंने सांगोपांग अध्ययन किया एवं स्वयंद्वारा रचित साहित्यमें उनका निचोड़ प्रस्तुत किया। स्वामीजीद्वारा रचित साहित्यका विवरण इस प्रकार है—

(१) श्रीमद्भगवद्गीता हंसनादिनी प्राकृत टीका, (२) हंसहिंडोल (कृष्णभक्तिपरक दोहे, गजलें एवं कविताएँ), (३) षट्चक्रनिरूपण, (४) वैदिक बृहत्सन्ध्या, (५) संध्यासे आयुवृद्धि, (६) त्रिकुटीविलास, (७) बृहत् स्नानविधि, (८) हंसनाद (प्रवचन-संग्रह), (९) प्रेम फव्वारा इत्यादि।

ईस्वी सन् १९०६ में अलवर रियासतके तत्कालीन नरेश राजर्षि महाराज जयसिंहको दीक्षा देकर आपने राजगुरुके पदको सुशोभित किया। लाखों अन्य अनुयायियोंमें झालावाड़नरेश श्रीराजेन्द्रसिंह झाला भी शामिल थे। पं० मोतीलाल शास्त्री, श्रीचन्द्रधर शर्मा गुलेरी इनके घनिष्ठ मित्र थे एवं अलवर कालीमोरी आश्रमके योगीराज हीरानाथजी महाराज भी आपके समकालीन सन्त थे।

श्रीमत्परमहंस परिव्राजकाचार्य स्वामी श्रीहंसस्वरूपजी महाराजने अलवरमें बाला किला, बानसूर तहसीलमें ग्राम हसीपुर सरिस्का कोठी एवं हंसाश्रम भूगोरमें निवास किया। आपकी स्मृतिमें वहाँ आपकी भव्य प्रतिमा प्रतिष्ठित है एवं हंसाश्रम (वन विभाग) बना हुआ है और टहलावास (निकट सिलीसेढ़ झील)-में समाधि और छतरी भक्तोंके आकर्षणका प्रमुख केन्द्र है। उक्त दोनों स्थानोंपर प्रतिवर्ष आपकी पावन स्मृतिमें गुरुपूर्णिमा व गीताजयन्ती मनायी जाती है। त्रिकुटी महल चंदवारा मुजफ्फरपुर एवं कबिलपुरा मठ जिला वैशाली बिहारमें आपके दो मुख्य प्राचीन स्थल हैं। आपका गोलोकवास २० अक्टूबर १९३० ई० को धनतेरसके दिन मुजफ्फरपुर बिहारमें हुआ था।

स्वामीजी पूर्ण योगी, महान् आध्यात्मिक विद्वान् एवं इन सबसे ऊपर उत्कट कृष्णभक्त थे। आपका मानना था कि वर्तमानमें भारतके आध्यात्मिक पतनके प्रमुख कारण हैं—१-गुरु-प्रणालीका नष्ट-भ्रष्ट होना, २-अपनी संस्कृतिसे अरुचि एवं ३-पाश्चात्य संस्कृतिका अन्धानुकरण।

स्वामीजीकी शिक्षाएँ आज भी अत्यन्त समीचीन हैं, जिससे साधक भारी लाभ उठा सकते हैं। प्रमुख शिक्षाएँ इस प्रकार हैं—१-परस्त्रीका पूर्णतः त्याग किया जाना चाहिये। २-कामनाएँ छोड़ देनी चाहिये। ३-संसारमें प्रेम नहीं हो सकता, अतएव केवल भगवान्से प्रीति लगानी चाहिये। ४-असंग परमात्मा असंगको ही प्राप्तव्य है। ५-जगसे किनाराकर एकान्तमें भगवत्स्मरण करना चाहिये। ६-वेष-परिवर्तनके बजाय मनके परिवर्तनपर ध्यान देना चाहिये। ७-आलसी अवधूतसे प्रेमी अवधूत अधिक अच्छा है। ८-कलियुगमें नामका आश्रय लेकर भक्ति करना ही एकमात्र अवलम्ब है। ९-राम, कृष्ण, शिव आदिमें भेद नहीं देखना चाहिये। १०-समाजसेवाका अधिक आग्रह नहीं रखना चाहिये। ११-सभी जाति, वर्ण, धर्मादिकी संकीर्णताओंसे ऊपर उठकर समदृष्टि रखनी चाहिये।

सम्बन्ध संसारसे नहीं, परमात्मासे जोड़ो

(ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीशरणानन्दजी महाराज)

चित्तशुद्धिके लिये माने हुए सम्बन्धका त्याग करना अनिवार्य है। साधकको चाहिये कि शरीर और संसारके साथ जो माना हुआ सम्बन्ध है, उसको तोड़कर अपने प्रभुपर विश्वास करके उनके साथ सम्बन्ध जोड़े, उनके सिवा और किसीको अपना न माने।

उनको अपना माननेमें और उनसे प्रेम करनेमें साधक सदैव स्वतन्त्र है। हाँ, भगवान् उसको अपना मानें या न मानें, उसे अपना प्रेम प्रदान करें या ठुकरा दें, यह उनके हाथकी बात है। इसमें साधकके वशकी बात नहीं है, परंतु उनके ठुकरानेपर भी उनको अपना मानना, उनसे प्रेम करना और उन्हींपर निर्भर रहना—इसमें तो साधक किसी प्रकार भी पराधीन नहीं है। क्या गोपियोंको भगवान्ने नहीं ठुकराया, परंतु इतनेपर भी क्या वे कभी उनसे विमुख हुईं? क्या उनको अपना मानना और प्रेम करना छोड़ दिया? नहीं, वे चाहे ठुकरायें और चाहे प्रेम करें—प्रत्येक अवस्थामें उन गोपियोंको तो वे अपने ही दीखते थे। यही कारण था कि भगवान् अलग रहते हुए भी उनके पास ही थे। भगवान् श्यामसुन्दर भी उनके प्रेममें इतने मुग्ध थे कि उनका स्पर्श पाकर आये हुए पुष्पको देखकर प्रेममें विभोर हो जाते, उनके चरणकी रज हवामें उड़कर शरीरपर पड़ती, तो अपनेको धन्य मानते।

कोई कहे कि भगवान्को तो हमने कभी देखा नहीं, हम कैसे उनको अपना मान लें और कैसे उनसे प्रेम करें तो इसका उत्तर यह है कि जिस संसार और शरीरको तुम देख रहे हो, इससे सम्बन्धका त्याग करनेमें तो तुम स्वतन्त्र हो। यह सम्बन्ध तो तुम्हारा ही बनाया हुआ है। अतः इससे सम्बन्ध तोड़कर सर्वथा विमुख हो जाओ। यदि यह तुम्हारे पीछे-पीछे दौड़े तो भी तुम इसकी ओर दृष्टिपात मत करो। जब तुम्हारा इससे सम्बन्ध नहीं रहेगा, तब भगवान्से सम्बन्ध अपने-आप हो जायगा। इसको पीठ देते ही तुम भगवान्के सम्मुख हो जाओगे, सम्मुख होते ही तुम्हारे अनन्त जन्मोंके पापोंका नाश होकर तुम्हारा चित्त उसी क्षण शुद्ध हो जायगा और भगवान् तुमको अपना लेंगे। तब तुम भगवान्को देख लोगे।

कोई कहे कि 'पहले हमको भगवान्का प्रेम प्राप्त हो जाय, तब हम इस जगत्से सम्बन्ध छोड़ दें,' तो ऐसा नहीं होता। यदि कोई अपना मुख गिलोयसे भर ले और कहे कि मिसरीकी मिठास प्राप्त होनेपर गिलोयका त्याग करूँगा, तो यह जैसे सम्भव नहीं, इसी प्रकार जबतक साधक संसारको पीठ देकर भगवान्के सम्मुख नहीं होता, तबतक उनका प्रेम प्राप्त होना सम्भव नहीं है। उनसे सम्बन्ध जोड़नेके लिये अर्थात् जिनसे साधकका नित्य सम्बन्ध है और जिनको वह अपने ही प्रमादसे भूल गया है, उस भूलको मिटानेके लिये अपने माने हुए सम्बन्धको पहले मिटाना होगा।

शरीर और संसारसे सम्बन्ध टूटते ही निर्वासना और असंगता प्राप्त हो जायगी, रागका सर्वथा अभाव हो जायगा। निर्वासनासे योग, असंगतासे बोध और समर्पणसे अनुराग अपने-आप प्राप्त हो जाता है, यह नियम है।

जगत्से सम्बन्ध तोड़नेसे मुक्ति और भगवान्से सम्बन्ध जोड़ लेनेपर भक्ति स्वतः हो जाती है।

गो-चिन्तन—

गोमूत्रका चमत्कार

(१)

मेरे हाथमें कुछ समयसे बड़ी तेज खुजली रहती थी। अंग्रेजी दवाएँ—ट्यूब आदि लगाता रहा, उससे थोड़े समयके लिये मामूली आराम होता था, किंतु फिर वैसी ही खुजलाहट होने लगती। खुजलाते-खुजलाते खून-सा निकल आता था, और फिर बड़ा दर्द होता था। कई दवाइयाँ कीं, मगर कोई खास लाभ नहीं हुआ। मैंने 'कल्याण'के 'गोसेवा-अंक'में गोबर तथा गोमूत्रकी अद्भुत चमत्कारी घटनाएँ पढ़ीं, जिनमें खाज-खुजली, दाद, एक्जिमा तथा कोढ़ आदि बहुत कठिन रोगोंके गोमूत्र-गोबरसे ठीक होनेके उपाय भी दिये गये हैं। पढ़कर मनमें हुआ कि क्यों न मैं भी आजमाइश करूँ। गोमूत्र लगाकर देखूँ कि क्या होता है। हमारे यहाँ काली गायका एक बछड़ा है। मैंने उसके गोमूत्रका संग्रह किया और उसीसे बराबर हाथोंको धोने लगा। मेरे आश्चर्यका ठिकाना नहीं रहा, गोवत्स-मूत्र लगाते ही तत्काल खुजलीमें कुछ आराम-सा मुझे मिलने लगा। कुछ देरके लिये तो मैं खुजलीको भूल ही गया। मैं 'गोसेवा-अंक' पढ़नेमें लग गया, खुजली याद भी न रही। तबसे थोड़ी-थोड़ी देरके बाद मैं पुनः उस स्थानपर गोवत्स-मूत्र लगाता रहा, इससे मुझे बहुत लाभ हुआ है। धीरे-धीरे खुजली सर्वथा समाप्त हो गयी।

मैंने 'गोसेवा-अंक'में गोमूत्र-गोमय आदिकी जैसी महिमा लिखी हुई पढ़ी, उसका मुझे प्रत्यक्ष अनुभव हुआ और मुझे लगा कि हमारे ऋषि-मुनियोंने कितनी सच्ची एवं उपयोगी बातें हमारे हितके लिये लिखी हैं, किंतु हमारा दुर्भाग्य है कि हम उनपर विश्वास ही नहीं करते, यह विडम्बना नहीं तो और क्या है?—**परशुराम हंस**

(२)

यह घटना २५ मई, १९९५ ई०की है। जब असह्य दुःख सुखमें परिवर्तित हो गया। बात यह है कि मेरी एड़ीमें बहुत पीड़ा रहती थी। इसके इलाजके लिये मैं अनेक देशी-विदेशी दवाइयोंका सहारा लेता रहा, अन्तमें डॉक्टरोंने परामर्श दिया कि 'आपकी एड़ीमें पस आ गया है, हड्डी बढ़ गयी है, मांस कम हो गया है, इसलिये आपके पैरसे सिरिंजद्वारा पस निकाला जायगा एवं अन्य उपचार करने पड़ेंगे' आदि-आदि। यह प्रक्रिया लगभग डेढ़ महीनेतक चली, किंतु कुछ लाभ न हुआ।

उन्हीं दिनों मेरे एक रिश्तेदार हमारे घर आये। वे 'कल्याण'के नियमित पाठक हैं। उन्होंने मुझे गोमूत्रका सेवन करनेकी सलाह दी। मैंने गोमूत्र-सेवन करना शुरू किया। यद्यपि इसके सेवनमें पहले मुझे थोड़ी कठिनाई तो हुई, किंतु इसके सेवनसे लाभ होते देख मुझे इस कठिनाईका आभास भी नहीं हुआ। गोमूत्रसे किया गया यह उपचार रामबाण सिद्ध हुआ। दो दिनमें ही बहुत लाभ मालूम हुआ। आज स्थिति यह है कि मैं सुबह काफी दूरतक दौड़ आता हूँ और अन्य कार्य भी सरलतासे कर लेता हूँ।

इसीलिये हमारे शास्त्रोंमें गौकी महत्ताका विशेषरूपसे बखान हुआ है और यहाँतक कहा गया है कि गौके पंचगव्यके सेवनसे आन्तरिक एवं बाह्य शुद्धि होती है, गोमूत्रके सेवनसे तो कैंसर-जैसा असाध्य रोग भी दूर हो सकता है। गाय हमारी माता कही जाती है। माताकी रग-रगमें पुत्र-कल्याणकी भावना रहती है। गायका दूध तो अमृतमय ही है।

इस अद्भुत चमत्कारसे मेरे मस्तिष्कमें यह तथ्य अब और अधिक स्पष्ट हो गया है कि गोसेवा एवं गोमूत्र आदिके सेवनसे अनेक असाध्य रोगोंसे मुक्ति मिलती है, चित्त शान्त एवं प्रसन्न रहता है। इसीलिये तो प्राचीन कालसे ही हमारे शास्त्रोंमें गायको माता-जैसा उत्तम महत्त्वपूर्ण स्थान दिया गया है। अतः यह सभीके समादर-योग्य है।

—**गौरव गोयल**

व्रतोत्सव-पर्व

सं० २०७८, शक १९४३, सन् २०२१, सूर्य उत्तरायण, ग्रीष्म-ऋतु, ज्येष्ठ-कृष्णपक्ष

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि
प्रतिपदा दिनमें २।२८ बजेतक	गुरु	ज्येष्ठा रात्रिमें १२।४५ बजेतक	२७ मई	**धनुराशि** रात्रिमें १२।४५ बजेसे।
द्वितीया ,, १२।९ बजेतक	शुक्र	मूल ,, ११।२०बजेतक	२८ ,,	**भद्रा** रात्रिमें ११।७ बजेसे, **मूल** रात्रिमें ११।२० बजेतक।
तृतीया ,, १०।३ बजेतक	शनि	पू०षा० ,, १०।९ बजेतक	२९ ,,	**भद्रा** दिनमें १०।३ बजेतक, **मकरराशि** रात्रिमें ३।५७ बजेसे, **संकष्टी श्रीगणेशचतुर्थीव्रत, चन्द्रोदय** रात्रिमें १०।२ बजे।
चतुर्थी ,, ८।१३ बजेतक	रवि	उ० षा० ,, ९।२० बजेतक	३० ,,	× × × ×
पंचमी प्रात: ६।४४ बजेतक	सोम	श्रवण ,, ८।५० बजेतक	३१ ,,	× × × ×
षष्ठी ,, ५।३९ बजेतक	मंगल	धनिष्ठा ,, ८।४७ बजेतक	१ जून	**भद्रा** प्रात: ५। ३९ बजेसे सायं ५। २१ बजेतक, **कुम्भराशि** दिनमें ८।४८ बजेसे, **पंचकारम्भ** दिनमें ८।४८ बजे।
अष्टमी रात्रिशेष ४।५५ बजेतक	बुध	शतभिषा ,, ९।११ बजेतक	२ ,,	**श्रीशीतलाष्टमी व्रत।**
नवमी अहोरात्र	गुरु	पू० भा० ,, १०।९ बजेतक	३ ,,	**मीनराशि** दिनमें ३।५५ बजेसे।
नवमी प्रात: ५।२० बजेतक	शुक्र	उ० भा० ,, ११।३६ बजेतक	४ ,,	**भद्रा** सायं ५।४७ बजेसे, **मूल** रात्रिमें ११।३६ बजेसे।
दशमी ,, ६।१४ बजेतक	शनि	रेवती ,, १।३० बजेतक	५ ,,	**भद्रा** प्रात: ६।१४ बजेतक, **मेषराशि** रात्रिमें १।३० बजेसे, **पंचक** समाप्त रात्रिमें १।३० बजे।
एकादशी दिनमें ७।३६ बजेतक	रवि	अश्वनी ,, ३।४६ बजेतक	६ ,,	**अचला एकादशीव्रत** (सबका), **मूल** रात्रिमें ३।४६ बजेतक।
द्वादशी ,, ९।१८ बजेतक	सोम	भरणी अहोरात्र	७ ,,	**सोमप्रदोषव्रत।**
त्रयोदशी ,, ११।१६ बजेतक	मंगल	भरणी प्रात: ६।१६ बजेतक	८ ,,	**भद्रा** दिनमें ११।१६ बजेसे रात्रिमें १२।१७ बजेतक, **वृषराशि** दिनमें १२।५५ बजेसे।
चतुर्दशी ,, १।१८ बजेतक	बुध	कृत्तिका दिनमें ८।५४ बजेतक	९ ,,	**वटसावित्री व्रत।**
अमावस्या ,, ३।१५ बजेतक	गुरु	रोहिणी ,, ११।२८ बजेतक	१० ,,	**अमावस्या, मिथुनराशि** रात्रिमें १२।३८ बजेसे।

सं० २०७८, शक १९४३, सन् २०२१, सूर्य उत्तरायण, ग्रीष्म-ऋतु, ज्येष्ठ-शुक्लपक्ष

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि
प्रतिपदा दिनमें ४।५६ बजेतक	शुक्र	मृगशिरा दिनमें १।४८ बजेतक	११ जून	**करवीरव्रत।**
द्वितीया सायं ६।१४ बजेतक	शनि	आर्द्रा ,, ३।४७ बजेतक	१२ ,,	× × × ×
तृतीया रात्रिमें ७।५ बजेतक	रवि	पुनर्वसु सायं ५।२० बजेतक	१३ ,,	**कर्कराशि** दिनमें १०।५७ बजेसे, **रम्भाव्रत।**
चतुर्थी ,, ७।२७ बजेतक	सोम	पुष्य ,, ६।२५ बजेतक	१४ ,,	**भद्रा** दिनमें ७।१६ बजेसे रात्रिमें ७।२७ बजेतक, **वैनायकी श्रीगणेशचतुर्थीव्रत, मूल** सायं ६।२५ बजेसे।
पंचमी ,, ७।१७ बजेतक	मंगल	आश्लेषा सायं ६।५९ बजेतक	१५ ,,	**सिंहराशि** सायं ६।५९ बजेसे, **मिथुन संक्रान्ति** दिनमें १२।५१ बजे।
षष्ठी सायं ६।३८ बजेतक	बुध	मघा रात्रिमें ७।३ बजेतक	१६ ,,	**मूल** रात्रिमें ७।३ बजेतक।
सप्तमी ,, ५।३१ बजेतक	गुरु	पू०फा० सायं ६।४० बजेतक	१७ ,,	**भद्रा** सायं ५।३१ बजेसे रात्रिशेष ४।४५ बजेतक, **कन्याराशि** रात्रिमें १२।२९ बजेसे।
अष्टमी दिनमें ४।० बजेतक	शुक्र	उ०फा० ,, ५।५५ बजेतक	१८ ,,	**मेला क्षीरभवानी** (कश्मीर)।
नवमी ,, २।८ बजेतक	शनि	हस्त दिनमें ४।४९ बजेतक	१९ ,,	**तुलाराशि** रात्रिशेष ४।८ बजेसे।
दशमी ,, १२।१ बजेतक	रवि	चित्रा ,, ३।२७ बजेतक	२० ,,	**भद्रा** रात्रिमें १०।५१ बजेसे, **श्रीगंगादशहरा।**
एकादशी ,, ९।४१ बजेतक	सोम	स्वाती ,, १।५४ बजेतक	२१ ,,	**भद्रा** दिनमें ९।४१ बजेतक, **निर्जला (भीमसेनी) एकादशीव्रत** (सबका), **सायन कर्कराशिका सूर्य** दिनमें ३।५४ बजे।
द्वादशी प्रात: ७।१४ बजेतक	मंगल	विशाखा ,, १२।१६ बजेतक	२२ ,,	**वृश्चिकराशि** प्रात: ६।४१ बजेसे, **भौमप्रदोषव्रत।**
चतुर्दशी रात्रिमें २।१९ बजेतक	बुध	अनुराधा ,, १०।३५ बजेतक	२३ ,,	**भद्रा** रात्रिमें २।१९ बजेसे, **मूल** दिनमें १०।३५ बजेसे।
पूर्णिमा ,, १२।० बजेतक	गुरु	ज्येष्ठा ,, ९।४ बजेतक	२४ ,,	**भद्रा** दिनमें १।९ बजेतक, **धनुराशि** दिनमें ९।४ बजेसे, **पूर्णिमा।**

साधनोपयोगी पत्र

पूजा-प्रतिष्ठासे बचिये

प्रिय महोदय, सादर हरिस्मरण! आपका कृपापत्र मिला। धन्यवाद! आपने लिखा कि 'समय बहुत अच्छा बीत रहा है, भजन-साधनके साथ ही मैं आजकल प्रवचन भी करता हूँ, बहुत लोग सुननेको आते हैं, लोगोंका प्रेम तथा उत्साह उत्तरोत्तर बढ़ रहा है।' सो बहुत आनन्दकी बात है। भगवान्के प्रति लोगोंमें प्रवृत्ति हो, उनका उत्साह-उल्लास बढ़े और वे भजन-साधन करनेमें लगें—यह बहुत ही उत्तम बात है। जो लोग स्वयं भगवान्का स्मरण करते हैं और दूसरोंसे करवाते हैं, वे निश्चय ही धन्य हैं। एक प्राचीन श्लोक मिलता है—

ते सभाग्या मनुष्येषु कृतार्था नृप निश्चितम्।
स्मरन्ति ये स्मारयन्ति हरेर्नाम कलौ युगे॥

'मनुष्योंमें वे लोग धन्य हैं और निश्चय ही कृतार्थ हैं, जो इस कलियुगमें स्वयं भगवान्के नामका स्मरण करते हैं और दूसरोंसे करवाते हैं।'

इस दृष्टिसे आपका कार्य बहुत ही सराहनीय है। परंतु एक सुहृद्के नाते मेरा आपसे निवेदन है कि आप सदा-सर्वदा आत्मनिरीक्षण करते रहियेगा। आप शुद्ध वैराग्यके भावसे, केवल भगवत्स्मरण एवं भजन-ध्यानके लिये ही घरसे निकले हैं—ऐसा आप मानते हैं। अतएव यह ध्यान रखियेगा कि कहीं वैराग्य और भजनके पवित्र स्थानमें बड़प्पनका या गुरुपनका अभिमान, मान-सम्मानकी इच्छा और लोगोंका मनोरंजन करके उनसे विषय प्राप्त करनेकी लालसा न जाग्रत् हो जाय।

पता नहीं लगता—जब मनुष्य भजन-साधन करने लगता है, घर त्यागकर संन्यासी हो जाता है, वैराग्यका अभ्यास करता है, आहार-विहार आदिमें संयम-नियमका पालन करता है, श्रीभगवन्नाम-गुण-कीर्तनमें कभी मस्त हो जाता है, तब सरल हृदयके नर-नारी उसे भक्त या महात्मा मानकर उसकी पूजा-प्रतिष्ठा करने लगते हैं, उससे उपदेश प्राप्त करके भवसागरसे पार होना चाहते हैं, उसे अपनी जीवन-नौकाका कर्णधार गुरु मानने एवं कहने लगते हैं और ऐसी स्थितिमें यदि इन बातोंमें उसे जरा भी रस आने लगता है तो संयम-नियमके साधन, भगवद्भजन तथा सत्संगके प्रभावसे जो कामना-वासनाएँ तथा दुर्गुण-दुर्विचार हृदयमें लुप्त-से हो गये थे, छिप गये थे, जिससे उसने मान लिया था कि मैं काम, क्रोध, लोभ, मान और मोहादिसे मुक्त हो गया हूँ, वे कामना-वासनाएँ और दुर्गुण-दुर्विचार पुनः प्रबलरूपमें जाग उठते हैं, जो उसकी सारी साधन-सम्पत्तिको सहज ही लूटकर उसके अन्दर धन, मान, प्रतिष्ठाकी प्रत्यक्ष और प्रबल भूख उत्पन्न कर देते हैं, जिससे उसका जीवन सच्चाईसे दूर हटकर निरी कृत्रिमताका तथा दम्भका केन्द्र बन जाता है। वह फिर अपने व्याख्यानों, प्रवचनों, कथाओं, कीर्तनों और प्रेम तथा ध्यानकी नकली भाव-भंगियोंसे उन नर-नारियोंको रिझाकर उनसे अपनी वासना-कामनाकी तृप्ति करनेके प्रयत्नमें लग जाता है। भलीभाँति आत्मनिरीक्षण करनेपर मनके इस दोषका पता लग सकता है। कभी मनकी ऐसी स्थिति मालूम दे तो सावधान हो जाना चाहिये तथा लोगोंके सामने किये जानेवाले व्याख्यानों, प्रवचनों एवं कीर्तनोंको छोड़कर एकान्तमें भगवान्के सामने रो-रोकर कातर प्रार्थना करके अपनी स्थिति रखनी चाहिये और उनसे रक्षाकी भीख माँगनी चाहिये।

आपको यह सर्वथा सावधानीके साथ देखते रहना चाहिये कि आपकी क्रिया और चेष्टा लोकरंजनार्थ—लोगोंको प्रसन्न करके अपनी ओर आकर्षित करनेके लिये तो नहीं हो रही है। वे जब आपको फूलोंका हार पहनाते हैं, चन्दन लगाते हैं, मान-सम्मान करते हैं, पैर छूते हैं; भक्त, जीवन्मुक्त महात्मा, महाभागवत, महापुरुष या भगवान् कहकर सिर नवाते हैं, आपके आचरण, साधन या स्थितिकी बड़ाई करते हैं, आपको अपना पथ-प्रदर्शक या गुरु बनाना चाहते हैं, सरल हृदयसे अपनी दुरवस्थाको आपके सामने रखकर उससे त्राण करने और भगवत्प्रेम प्रदान करनेकी प्रार्थना करते हैं, उस समय आपका मन क्या कहता है? क्या उससे आपके मनमें उस समय आनन्द आता है? उस मान-सम्मान और पूजा-प्रतिष्ठामें रस, सुख तथा गौरवकी अनुभूति होती है? उन लोगोंको इस पूजा-प्रतिष्ठा तथा मान-सम्मान करने एवं पैर पूजनेकी प्रवृत्तिको आप उत्साह देते हैं, उनकी भक्ति, श्रद्धा मानकर प्रसन्न होते हुए उसे अच्छा बतलाते हैं या इन सब कार्योंका विरोध करते हैं?

विरोध करते हुए भी क्या आपके मनमें कभी ऐसी बात आती है कि विरोध करनेपर ये नर-नारी मुझे और भी अधिक ऊँची स्थितिका महात्मा या प्रेमी समझेंगे और मेरी इस विनम्रतापर विशेष मुग्ध होकर मेरा विशेष सम्मान करेंगे ?

यदि आपको मान-पूजामें—चरणस्पर्श कराने आदिमें रस आता है, प्रसन्नता होती है, आप सुखका अनुभव करते हैं, अथवा इसमें अपना एवं उनका 'कल्याण होगा' ऐसा मानते-कहते हैं, दु:ख, संकोच और लज्जाका अनुभव नहीं होता, यह एक 'महान् पतन करानेवाला साधनका प्रधान विघ्न' है, ऐसा नहीं मानते तो निश्चय समझिये, आपका पतन हो रहा है। आप परमार्थके पुण्य-पथसे च्युत हो रहे हैं। ऐसी अवस्थामें सावधान हो जाइये। धन और स्त्रीके संसर्गसे तो सदा-सर्वदा सर्प तथा अग्निसे बचनेकी तरह सर्वथा बचे ही रहिये; मान, प्रतिष्ठा, पूजा, यश, कीर्तिकी भी कभी जरा भी इच्छा मत कीजिये।

यह बड़े आश्वासनकी बात है कि आप अपनी कमजोरियोंको स्वीकार करते हैं और अपनी मानस-स्थितिको समझते हैं; पर इतनेपर भी आप उन कार्योंको कर ही रहे हैं, जिनका परिणाम आपके लिये अहितकर हो सकता है—यह अवश्य दु:खकी बात है। मेरी रायमें अभी आपको चाहिये कि आप दूसरोंको उपदेश देना बन्द कर दें। पूजा-प्रतिष्ठाको कभी स्वीकार न करें। किसीको चरण न छूने दें। वर्तमान स्थानको छोड़ दें और कहीं अन्यत्र जाकर नियमपूर्वक भजन करें। भजनमें इतना समय लगायें कि थोड़ी देर सोने तथा शौच-स्नान-भोजनादिके अतिरिक्त दूसरी बातके सोचने तथा दूसरा काम करनेके लिये अवकाश ही नहीं मिले। स्त्रियोंसे एकान्तमें कभी न मिलें, न बातचीत करें, न किसी अकेली स्त्रीके घर भिक्षा आदिके लिये जायँ और न किसी स्त्रीको मन्त्र दें। आप तो नये साधक हैं। सिद्ध महापुरुष भी वैसे ही आचरण करते हैं, जिनसे उनका अनुकरण करके इतर लोग सन्मार्गपर आरूढ़ रहें। स्वयं भगवान्ने गीता (३। २१—२४)-में कहा है—

यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः।
स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते॥
न मे पार्थास्ति कर्तव्यं त्रिषु लोकेषु किंचन।
नानवाप्तमवाप्तव्यं वर्त एव च कर्मणि॥
यदि ह्यहं न वर्तेयं जातु कर्मण्यतन्द्रितः।
मम वर्त्मानुवर्तन्ते मनुष्याः पार्थ सर्वशः॥
उत्सीदेयुरिमे लोका न कुर्यां कर्म चेदहम्।
संकरस्य च कर्ता स्यामुपहन्यामिमाः प्रजाः॥

'श्रेष्ठ पुरुष जो-जो आचरण करता है, इतर लोग भी उसीका अनुकरण करते हैं। वह जो कुछ भी प्रमाण कर देता है, लोग उसीका अनुवर्तन करते हैं। अर्जुन! मेरे लिये त्रिलोकीमें कोई भी कर्तव्य नहीं है, न कोई प्राप्त होनेयोग्य वस्तु ही मुझको अप्राप्त है; तथापि मैं कर्ममें ही बर्तता हूँ। यदि मैं कदाचित् सावधानीके साथ आदर्श कर्माचरण न करूँ तो पार्थ! मानव-समुदाय सब प्रकारसे मेरे ही बताये मार्गपर चलने लगे अर्थात् आदर्श कर्मोंका परित्याग कर दे। इस प्रकार यदि मैं आदर्श कर्म न करूँ, तो लोक उत्सन्न हो जायँ और मैं संकरताका कारण बनूँ तथा इस सारी प्रजाका नाश करनेवाला होऊँ।'

जब इस प्रकार स्वयं भगवान् और जनकादि सिद्ध पुरुष भी श्रेष्ठ आदर्श आचरण करना चाहते हैं, तब आप तो साधक हैं। यह सत्य है कि नित्य समत्वमें स्थित परम श्रेष्ठ सिद्ध महापुरुषोंका यदि कहीं मान-सम्मान होता है, तो उससे उनकी कोई हानि नहीं होती, तथापि वे भी उसे स्वीकार नहीं करते। असलमें मान-सम्मान होता है श्रेष्ठत्वका—सदाचार, सद्गुण, ऐश्वर्य, शक्ति, नि:स्वार्थभाव, त्याग, वैराग्य, भक्ति और ज्ञानका। ये सारी चीजें भगवान्की हैं; यदि किसीमें ये हैं तो भगवान्की दी हुई हैं। फिर वह इनके लिये अभिमान क्यों करे, भगवान्को मिलनेवाले सम्मान-गौरवका अधिकारी अपनेको क्यों समझे? जो लोग इस मान-सम्मानको अपनी प्राप्तव्य वस्तु समझकर स्वीकार करते हैं और फूल उठते हैं, वे तो अपना पतन ही करते हैं। सबसे अच्छी और लाभकी बात तो यह है कि इन्हें स्वीकार ही न किया जाय और यदि कहीं स्वीकार न करनेसे किसीको यथार्थमें दु:ख होता हो तो उतना ही स्वीकार करे, जितना शास्त्रमर्यादा और सदाचारके अनुकूल हो और उसको भी भगवान्के ही समर्पण कर दे। यही समझे कि यह सब भगवान्का ही मान-सम्मान है। मैं जो निमित्त बनाया गया हूँ, इससे मालूम होता है कि इसमें कहीं-न-कहीं मेरी कोई वासना ही कारण है। और भगवान्से प्रार्थना करे कि वे इस मीठे विषसे सदा बचाते रहें। शेष प्रभुकृपा।

कृपानुभूति

माँ पूर्णागिरिकी कृपा

मैं मूलरूपसे रानीखेतके समीप मड़गाँवका रहनेवाला हूँ, उत्तर प्रदेश एवं उत्तराखण्ड वन-विभागमें १९६४ से २००५ तक सेवाकर वन-क्षेत्राधिकारी पदसे सेवानिवृत्त हुआ। वर्ष १९६५ में जब मैं दोगाड़ी रेंजमें वन दरोगाके पदपर कार्यरत था, तब मेरे अधीनस्थ एक कर्मचारीने सर्वप्रथम मुझे माँ पूर्णागिरिके दर्शन करवाये, और माँको मनोकामना पूर्ण करनेवाली बतलाया, तबसे मुझमें माँके प्रति असीम श्रद्धा-भाव प्रकट हुआ। उस समय सतपुरसे ठुलीगाढतक वाहनोंसे, उसके बाद पहाड़पर चढ़ाई-उतराईभरे रास्तेसे लगभग ७ कि०मी० पैदल छोटे सँकरे रास्तेसे होकर मन्दिर जाते थे। पर्वतके मूलसे ऊपर चढ़नेपर बायीं तरफ चढ़ान थी, जहाँसे नीचे देखनेमें डर लगता था और दायीं तरफ पहाड़ था, जिसपर बावड़की घास होती थी, रास्ता सिर्फ डेढ़-से-ढाई फीट चौड़ा होता था। भक्तगण माँके दर्शन-पूजनके बाद नीचे उतरते वक्त अपनी मनोकामना माँको व्यक्तकर बावड़की घासपर एक गाँठ लगा देते थे, इसलिये पर्वतपर गाँठ-ही-गाँठ नजर आती थी, मनोकामना पूर्ण होनेपर पुनः दर्शन-पूजनके बाद एक गाँठ खोल देते थे।

अब ठुलीगाढसे भैरवमन्दिरतक लगभग ८ कि०मी० पक्की सड़क है, फिर उसके बाद पैदल रास्ता है, उसपर लगभग ६ फीट चौड़ी सीढ़ियाँ मारबल एवं पत्थर की लगी हैं। मन्दिरके मूलसे ऊपर जानेपर ६ फीट के बीचमें लोहेकी रेलिंग आने-जानेकी सुविधाहेतु बनायी गयी है। चैत्र एवं शरदकी नवरात्रिमें यहाँ प्रतिदिन हजारों दर्शनार्थी माँके प्रति सच्ची श्रद्धासे आते हैं।

वर्ष १९६६ में मेरा स्वास्थ्य खराब रहने लगा, इससे मैं काफी कमजोर हो गया। मुझे अपने शरीरसे उदासीनता-जैसी होने लगी। एक दिन मैं अकेले माँके दर्शनोंके लिये मन्दिरमें गया और नतमस्तक होकर कहा—'माँ! मैं अपने शरीरसे अब काफी दुखी हूँ, मुझे या तो इधर कर दो, या उधर कर दो।' परंतु वह तो माँ है, अपने पुत्रको कौन माँ दुखी देखना चाहती है, उस दिनसे अबतक मैं एकदम स्वस्थ हूँ। वर्ष १९६५ से अबतक माँके बुलावेपर मन्दिर चला जाता हूँ।

इस शारदीय नवरात्रिमें मुझे जाना था, अब उम्र ७५ वर्षकी हो गयी है, मेरे दोनों पाँवोंके घुटनोंमें दर्द रहता है, अतः सुबह-शाम २-३कि०मी० पैदल घूमने लाठी लेकर जाता हूँ। सोचा कि अब जानेमें परेशानी होगी। गत ३ अक्टूबर (पंचमी)-को जब मैं वाहनसे भैरव मन्दिरतक गया, उसके बाद मन्दिरतक ३ कि०मी० ऊपर चढ़नेमें मेरे पाँवोंमें दर्द होने लगा। इधर-उधर दुकानोंमें लाठी ढूँढ़ने लगा, परंतु लाठी वहाँ सम्भवतः बिकती ही नहीं थी। मैंने एकाग्रचित्तसे माँका ध्यान किया और कहा—'माँ! आजतक तो मैंने बिना लाठीके, बिना रुके तेरे दर्शन किये, परंतु आज लाठीके सहारेके बिना मैं दर्शन नहीं कर पाऊँगा, मेरे मनमें एक करुण पुकार उठी—माँ! मुझे शक्ति दो।' अचानक मुझे लगा मेरे पाँव अपने-आप आगे बढ़ रहे हैं। दर्दका नाम नहीं, बिना किसी सहारेके चढ़ा एवं नीचे उतर आया। यह सब उस माँकी ही शक्ति थी।

३-४ वर्ष पहलेकी बात है, एक दिन मुझे बुखार हो गया और सिर चकराने लगा। एकाएक लगा कि माँ मुझे बुला रही है। मैंने मन्दिर जानेका मानसिक संकल्प किया और शामके वक्त बाजार-छडानीसे प्रसाद एवं फल-फूल लेकर घर आया। मेरी पत्नीने बैगमें पूजाका सामान देखा, तो मुझसे कहा—'आप कल क्या पूर्णागिरि मन्दिर जा रहे हैं? आपका स्वास्थ्य ठीक नहीं है, मन्दिर जा रहे हैं, तो मैं मना नहीं करूँगी, बाकी आपकी इच्छा।' मैंने कहा—'तुम चिन्ता न करो, माँने बुलाया है, वे ही मेरी रक्षा करेंगी।'

प्रातः ६ बजे मैं बस एवं पैदल चलकर मन्दिर पहुँचा और उसी प्रकार शाम ६ बजे लगभग ३०० कि०मी० यात्राकर वापस आ गया। मुझे कहीं भी यह आभास नहीं रहा कि मेरा स्वास्थ्य खराब है, एकदम स्वस्थ होकर लौटा।

यह सब माता भगवती पूर्णागिरिकी कृपा है, मैं जो हूँ, सब उस माँकी कृपासे हूँ। प्रत्येक परेशानीमें मेरे दुःखका वह खुद निवारण कर देती है, क्योंकि वह माता है और मैं पुत्र हूँ।—**लीलाधर बेलवाल**

पढ़ो, समझो और करो

(१)

प्रेतकी पुण्य-याचना

घटना पुरानी है, पर है बिलकुल सत्य। मेरे सम्पर्की श्रीरामसिंहासन साहु बहुत दिनोंसे आसाममें व्यापार करते आ रहे हैं। पहले वे वहाँ घोड़ेकी लदिया करते थे; अब कपड़ा आदिकी दूकान है। एक दिन वे घोड़ा लादनेके लिये (घोड़ेपर सामान लेने) अपने साथियोंके साथ बहुत दूर एक बड़ी बस्तीमें चले। दोपहरके समय सभी लोग रास्तेमें पड़नेवाली एक नदीके किनारे भोजन करने बैठे। इनमें एक 'भोला' नामक आदमी था, जो स्वभावका भी भोला था। वह अपना खाना थालीमें रखकर नदीमें जल लेने गया। लौटनेपर देखा कि 'उसका खाना एक कुत्ता खा रहा है और उसके साथी देख-देखकर हँस रहे हैं।' मनमें यह सोचकर कि 'खाना तो कुत्तेने जूँठा कर ही दिया, उसे खदेड़ने-मारनेसे क्या लाभ?'—भोलाने कुत्तेको सारा खाना खिला दिया और थाली मलकर रख ली। इस तरह वह उस दिन भूखा रहा। उसके इस भोलेपनका साथियोंने खूब मजाक उड़ाया।

सामान लेकर लौटते समय संध्या हो जानेके कारण एक समीपके गाँवमें वे लोग ठहर गये। संयोगसे ये लोग एक ऐसे आदमीके द्वारपर ठहरे, जिसके घरमें एक आदमी 'ब्रह्मदुखी' था। घरका मालिक उदास एवं चिन्तित बैठा था। उसे देखकर व्यापारियोंने उदासीका कारण पूछा तो उत्तर मिला—'क्या करें भाई! हमारे घरमें एक आदमी ब्रह्मपीड़ित है।' मजाकमें ही व्यापारियोंने ब्रह्मदु:ख झाड़नेके लिये भोलाको उस आश्रयदाताके घर जानेको कहा। आश्रयदाता भी भोलाको तान्त्रिक व्यक्ति समझकर अपने घर चलनेके लिये आग्रह करने लगा। भोला तो बेचारा भोला था ही, अपने भोलेपनमें ही उसके घर चला गया। आँगनमें बैठे ब्रह्मराक्षससे पीड़ित व्यक्तिने जब भोलाको देखा तो जोरसे हँसकर कहा (उस समय वह प्रेतावेशमें था, अत: प्रेत ही बोल उठा)—'क्या जी, तुम्हीं आये हो? अच्छा, मैं तो इसके घरसे चला जाऊँगा, पर मेरी एक शर्त मानो तब।' भोलाने शर्त पूछी तो उत्तर मिला 'तुम आजकी अपनी कमाई मुझे दे दो तो मैं इसे सदाके लिये छोड़कर इसके घरसे चला जाऊँ।' भोला जब इस बातको नहीं समझ सका तो प्रेतने उसे कुत्तेको खाना खिलानेकी बात याद दिलायी और कहा कि—

'मनुष्यकी सच्ची कमाई यही है। इसका तुम्हें अक्षय पुण्य मिला है। यदि किसी ब्राह्मणद्वारा मेरे नामसे इस पुण्यके अर्पणका संकल्प कर दो तो मैं यहाँसे चला जाऊँ।'

भोलाने उसी समय एक ब्राह्मणको बुलाकर अपना पुण्य प्रेतको दान कर दिया। फिर तो सदाके लिये गृहस्वामीको प्रेतपीड़ासे छुटकारा मिला गया!—**उमाशंकर सिंह**

(२)

सहयोग और सद्भाव

ब्रिटेन-प्रवासके दौरान ट्रेन-ड्राइवर और पुलिसद्वारा सहयोगकी दो घटनाएँ हैं। मुझे जब भी इनकी स्मृति होती है, तो हृदय आनन्दसे भर उठता है और सोचता हूँ कि ऐसा ही सहयोगका भाव यदि अन्य लोगोंमें भी आ जाय तो यह दुनिया कितनी खूबसूरत हो जाय! घटनाएँ इस प्रकार हैं—

एक बार कार्डिफके केठेज नामक स्टेशनसे मुझे कहीं जाना था। मैं केठेज स्टेशन गया। रविवारका दिन था। वहाँ टिकट-खिड़की बन्द थी। स्टेशनपर भी कोई नहीं था। तो मैं सीधे प्लेटफार्मपर खड़ा होकर ट्रेनका इन्तजार करने लगा।

ट्रेन आनेका समय हो गया। पर ट्रेन नहीं आयी। कोई आधा घण्टा गुजर गया। मैं सोचने लगा कि यहाँकी व्यवस्था बहुत बिगड़ती जा रही है।

इतनेमें देखा कि एक मालगाड़ी चली आ रही है। मालगाड़ी उस प्लेटफार्मपर रुक गयी। उसके ड्राइवरने चिल्लाकर मुझसे पूछा—'कहाँ जाना है?'

मैंने बताया कि फलाँ-फलाँ जगह जाना है। 'क्या आपको पता नहीं है कि आज रविवारके दिन यह ट्रेन नहीं चलती है?' मालगाड़ीके ड्राइवरने कहा। 'मुझे पता नहीं है।' इसपर उसने मुझसे कहा कि मैं उसके साथ केबिनमें बैठ जाऊँ और वह मुझे मेरे गन्तव्य स्टेशनके निकटवर्ती स्टेशनपर छोड़ देगा।

मैं उसके साथ इंजनके केबिनमें बैठ गया और मुझे जहाँ जाना था, उस जगहके नजदीक उसने छोड़ दिया। मेरे टिकटके पैसे भी बचे। और पैसेकी कोई माँग भी नहीं हुई।

इसी प्रकार एक बार मुझे लंदनके बाहरी इलाकेमें स्थित एसेक्समें डॉक्टर देशमुखसे मिलने जाना था। उन्होंने मुझसे कहा था कि मैं जब कभी भी कार्डिफसे लंदन आऊँ, तो उनको बता दूँ। तब वह मिलना चाहेंगे।

एक दिन जब मैं लंदन जा रहा था, मैंने उनको पहलेसे ही फोन कर दिया। उन्होंने कहा कि वह कारसे आ जायँगे और तब मैं उनके साथ उनके घर चला जाऊँगा।

परंतु मैंने उनसे कहा कि आपको इतनी दूर आनेकी जरूरत नहीं है। मुझे ब्रिटिश संसदमें हाउस ऑफ कामन्सके एक मेम्बर जॉन कार्टराइटसे मिलना है। जब मैं खाली हो जाऊँगा, तो हाउस ऑफ कामन्ससे ट्यूब (मेट्रो ट्रेन) पकड़कर एसेक्स स्टेशन आ जाऊँगा और वहाँ पहुँचकर आपको फोन कर दूँगा। तब आप मुझे वहाँसे ले लीजियेगा।

मुझे आज भी याद है कि यह तीन दिसम्बर, १९९२ की घटना थी और वह भी भयंकर जाड़ेका दिन था। मैं जब एसेक्स स्टेशन पहुँचा तो लगभग रात हो चुकी थी। उन दिनों मोबाइल फोन आमतौरसे नहीं होते थे। मैं स्टेशनके पास स्थित एक फोनबूथमें गया और डॉक्टर देशमुखको फोन किया। तब उस फोनपर एक रिकार्डेड आवाज बजने लगी।

मैंने लगातार कई बार उनको फोन किया। हर बार वह फोन नहीं उठा रहे थे। सिर्फ रिकार्डेड आवाज बजती थी। उस शाम इतनी देर हो चुकी थी कि उस इलाकेकी सभी दुकानें भी बन्द हो गयी थीं। सिर्फ एक केमिस्टकी दुकान खुली थी। मैंने उस दुकानदारसे पूछा—'क्या यहाँ कोई डॉक्टर देशमुख नामके भारतीय डॉक्टर हैं और क्या उनका पता आपको मालूम है?'

'यहाँ तो दर्जनों भारतीय डॉक्टर हैं। मैं किस-किसका पता मालूम रखूँ।' केमिस्टने रूखा-सा उत्तर दिया। कोई सही जवाब नहीं मिला, तो मैंने सोचा कि सबसे पहले जाड़ेकी इस रातको गुजारनेकी कोई व्यवस्था करनी चाहिये।

वहाँ नजदीकमें ही एक बांग्लादेशी रेस्टोरेंट दिख रहा था। मैं वहाँ गया। उसके मालिकसे मिला और उनको अपनी रामकहानी बतायी।

उन्होंने मुझे सुझाव दिया कि मैं मददके लिये नजदीकके पुलिस स्टेशनमें बात करूँ। उनकी बात मानकर मैं पुलिस स्टेशन चला गया और वहाँ मैंने एक पुलिसवालेको अपनी व्यथा-कथा सुनायी।

उस पुलिसवालेने भी उसी नम्बरको मिलाया और उसपर भी वही रिकार्डेड आवाज फिर बजने लगी। उसने टेलीफोन मेरे कानमें लगाकर पूछा—'क्या यह उसी डॉक्टरकी आवाज है?' मैंने कहा—'मैं पहचान रहा हूँ। ये उसी डॉक्टरकी आवाज है।'

इसपर उसने 'टॉमसन येलो पेजेज' की डायरेक्टरी निकाली और उसमें उस डॉक्टरका नम्बर ढूँढ़ा। येलो पेजेजमें डॉक्टरके दो नम्बर दिये हुए थे। एक घरका और एक क्लीनिकका। मैं जिस नम्बरको डायल कर रहा था, वह क्लीनिकका था। मेरे पास घरका नम्बर नहीं था। तब उस पुलिसवालेने डॉक्टरके घरपर फोन मिलाया। तो मेरी सीधे डॉक्टरसे बात हो गयी। डॉक्टर देशमुखने पूछा—'इतनी देर क्यों हो गयी?'

मैंने कहा—'शामसे आपका नम्बर ही डायल कर रहा हूँ।' डॉक्टरने कहा—पर वह तो क्लीनिकका नंबर था। इस समय आप कहाँ हैं? मैं पुलिस-स्टेशनमें हूँ। पुलिस-स्टेशन! आप पुलिस-स्टेशन कैसे पहुँच गये? 'यहाँ आइये तो आपको सब बताता हूँ'—मैंने कहा।

फिर डॉ० देशमुख पुलिस स्टेशन आये, और अपनी कारसे मुझे अपने घर ले गये। इस प्रकार उस पुलिसवालेके सहयोगसे मैं गन्तव्यतक पहुँच गया, नहीं तो उस सर्द रातमें मेरी क्या स्थिति होती, यह सोचकर पसीना आ जाता है।—**डॉ० सन्तोष कुमार तिवारी**

(३)

मोटापा कम करनेके उपाय

अस्त-व्यस्त दिनचर्या और बाहरके खानेपर अत्यधिक निर्भरताका परिणाम है मोटापा। शरीरका वजन बढ़ना न सिर्फ व्यक्तिके व्यक्तित्वको प्रभावित करता है, बल्कि यह कई रोगोंको भी आमन्त्रित करता है।

मोटापेका कारण

१. अत्यधिक कैलोरीयुक्त भोजन करना, २. शरीरिक श्रमकी कमी, ३. आनुवंशिक प्रभाव, ४. तनाव, ५. अनिद्रा, ६. दवाइयोंका दुष्प्रभाव।

वजन घटानेके घरेलू उपाय

१. चीनीका उपयोग पूर्ण रूपसे बन्द कर दें। यानी मिठाई, आइसक्रीम, पेय पदार्थ नहीं लेने हैं। आप चाहें तो फल और सब्जियोंका ज्यादा उपयोग कर सकते हैं। गाजर, कद्दूका इस्तेमाल भी कर सकते हैं। इनमें प्राकृतिक शर्करा होती है, जो जल्दी हजम हो जाती है।

२. ८—१० गिलास पानी प्रतिदिन अवश्य लेना है, वजन कम करनेका यह एक रामबाण उपाय है।

३. आठ घण्टे नींद अवश्य लेनेका प्रयास रहे, ज्यादा नींद भी नुकसान करती है।

४. खाना खानेके बाद एक चम्मच सौंफ अवश्य लें अथवा सौंफका पानी पी सकते हैं। इससे भूख कम लगेगी और वजन कम होगा।

५. नित्य कच्चा टमाटर, नींबू, सलाद खानेके साथ लेनेसे मोटापा कम होता है।

६. नाश्तेमें भीगे हुए चनोंको लेनेसे लाभ होगा।

७. छाछ एवं दही पीनेसे मोटापा कम होता है।

८. प्रतिदिन प्रात:काल एक गिलास पानीमें एक नींबूका रस तथा दो चम्मच शहद, कुछ तुलसीके पत्तोंका रस मिलाकर पीनेसे मोटापा कम होता है। नींबू पाचन-तन्त्रको डिटॉक्सकर अतिरिक्त वसाको कम करता है।

९. मेथीके बीज, अजवाइनके बीज और काले जीरेके बीजको बराबर मात्रामें लेकर भूनकर पाउडर बना लें। इसे एक गिलास पानीमें मिलायें तथा दिनमें एक बार इसका सेवन करें, मोटापा जल्दी कम होगा।

१०. दालचीनी और हनी इन्फ्यूज्ड टीको मसालेके रूपमें इस्तेमाल करते हैं। यह मीठा और नमकीन दोनों तरहका आता है। इसके उपयोगसे वजन जल्दी ही कम होगा।

११. एक गिलास पानीको गरमकर उसमें १-२ ग्राम दालचीनीका पाउडर और एक चम्मच शहद मिलायें। प्रात:काल खाली पेट इसका सेवन करनेसे वजन अवश्य घटेगा।

१२. हरड़का पाउडर दो चम्मच एवं सौंफका पाउडर तीन चम्मच, जीराका पाउडर दो चम्मच और उतना ही करी पत्ता पाउडर—सबको मिलाकर चूर्ण बना लें। रातको सोते समय हलके गुनगुने पानीमें एक चम्मच चूर्ण लें। तेजीसे वजन कम होगा।

वजन घटानेहेतु आहारमें बदलाव करें

१. संतुलित आहार लेना चाहिये, जिसमें स्वास्थ्यके लिये आवश्यक सभी पोषक तत्त्व प्राप्त हो सकें। इसमें फल, सब्जियाँ, अनाज, दालें, डेयरी-उत्पाद आदि हों।

२. वजन कम करनेके लिये कम कार्बोहाइड्रेट वाले पदार्थ खाने चाहिये, जैसे—ब्राउन चावल, बाजरा, रागी और ओटका सेवन करें।

३. प्रोटीनयुक्त आहारके लिये सोयाबीन, दालें, पनीर, चने, दूध, हरी सब्जी आदिका ज्यादा सेवन करें।

४. जैतूनका तेल, राइस ऑयल, सरसोंका तेल, सोयाबीन, तिल, सूरजमुखी और मूंगफलीके तेलका उपयोग कर सकते हैं। मक्खन या घी सीमित मात्रामें ही लें।

५. प्रतिदिन १०० ग्राम हरी सब्जी तथा १०० ग्राम फल अवश्य खायें, इनमें भोजनके लिये आवश्यक विटामिन मिल जायँगे।

भोजनके लिये अच्छी आदतें

१. भोजन दिनमें तीन-चार बारमें थोड़ा-थोड़ा लें, जिससे एसीडिटी, पेटका भारीपन नहीं होगा।

२. रातका भोजन ८ बजेसे पहले कर लेना चाहिये।

३. पर्याप्त मात्रामें पानी अवश्य पीयें।

४. वजन कम करनेके लिये डाइटिंगकी जरूरत नहीं है।

५. सलादको ड्रेसिंग करके नहीं, बल्कि ताजे और वास्तविक रूपमें ही लें।

६. बाहरका भोजन नहीं खाना चाहिये।

—महावीरप्रसाद भूतड़ा

मनन करने योग्य

शास्त्रीय मर्यादाके उल्लंघनसे प्राप्त वस्तु सुखद नहीं होती

पूर्वकालकी बात है, गौतमीके उत्तर-तटपर आत्रेय नामके ऋषि निवास करते थे। उन्होंने अनेक ऋत्विज मुनियोंके साथ सत्र आरम्भ किया। उसमें हव्यवाहन अग्नि ही होता थे। सत्र पूरा होनेपर महर्षिने माहेश्वरी इष्टिका अनुष्ठान किया। इससे अणिमा आदि आठ प्रकारके ऐश्वर्य तथा सर्वत्र आने-जानेकी शक्ति उन्हें प्राप्त हो गयी। एक समय वे इन्द्रलोकमें गये। वहाँ उन्होंने देवताओंसे घिरे हुए इन्द्रको देखा, जो अप्सराओंका उत्तम नृत्य देख रहे थे। सिद्ध और साध्यगण उनकी स्तुति कर रहे थे। वे यह सब देखकर पुनः अपने आश्रमपर लौट आये और अपनी प्रियासे कहा—'देवि! अब मैं उत्तम-से-उत्तम फल-मूल भी, चाहे वे कितने ही अच्छे ढंगसे क्यों न बने हों, नहीं खा सकता। मुझे तो स्वर्गलोकके अमृत, परम पवित्र भक्ष्य-भोजन, श्रेष्ठ आसन, स्तुति, दान, सुन्दर सभा, अस्त्र-शस्त्र, मनोहर वस्त्र, अमरावतीपुरी और नन्दनवनकी याद आती है।' यों कहकर महात्मा आत्रेयने तपस्याके प्रभावसे विश्वकर्माको बुलाया और इस प्रकार कहा—'महात्मन्! मैं इन्द्रका पद चाहता हूँ। आप शीघ्र ही यहाँ इन्द्रपुरीका निर्माण कीजिये। इसके विपरीत यदि आपने कोई बात मुँहसे निकाली तो मैं निश्चय ही आपको भस्म कर डालूँगा।'

आत्रेयके यों कहनेपर प्रजापति विश्वकर्माने तत्काल ही वहाँ मेरुपर्वत, देवपुरी, कल्पवृक्ष, कल्पलता, कामधेनु, वज्र आदि मणियोंसे विभूषित, सुन्दर तथा अत्यन्त चित्रकारी किये हुए गृह बनाये। इतना ही नहीं, उन्होंने सर्वाङ्गसुन्दरी शचीकी भी आकृति बनायी। क्षणभरमें सुधर्मा सभा, मनोहारिणी अप्सराएँ, उच्चैःश्रवा अश्व, ऐरावत हाथी, वज्र आदि अस्त्र और सम्पूर्ण देवताओंका निर्माण हो गया। अपनी पत्नीके मना करनेपर भी आत्रेयने शचीके समान रूपवाली उस स्त्रीको अपनी भार्या बना लिया। वज्र आदि अस्त्रोंको भी धारण किया। नृत्य और संगीत आदि सब कुछ वहाँ उसी तरहसे होने लगा, जिस प्रकार वह इन्द्रपुरीमें देखा गया था। स्वर्गलोकका सम्पूर्ण सुख पाकर मुनिवर आत्रेयका चित्त बहुत प्रसन्न हुआ। उधर दैत्यों और दानवोंने जब स्वर्गका वैभव पृथ्वीपर उतरा हुआ सुना, तब उन्हें बड़ा क्रोध हुआ। वे परस्पर कहने लगे—'क्या कारण है कि इन्द्र स्वर्गलोकको छोड़कर पृथ्वीपर सुख भोगनेके लिये आया है? हमलोग अभी वृत्रासुरका वध करनेवाले उस इन्द्रसे युद्ध करनेके लिये चलें।' ऐसा निश्चय करके असुरोंने वहाँ आकर महर्षि आत्रेयके द्वारा निर्मित इन्द्रपुरीको भी घेर लिया। इससे भयभीत होकर आत्रेयने कहा—'मैं इन्द्र नहीं हूँ। मेरी यह भार्या भी शची नहीं है। न तो यह इन्द्रपुरी है और न यहाँ इन्द्रका नन्दनवन है। इन्द्र तो स्वर्गमें ही हैं। मैं तो वेदवेत्ता ब्राह्मण हूँ और ब्राह्मणोंके साथ ही गौतमीके तटपर निवास करता हूँ। दुर्दैवकी प्रेरणासे मैंने यह कर्म कर डाला, जो न तो वर्तमान कालमें सुख देनेवाला है और न भविष्यमें ही।'

असुर बोले—मुनिश्रेष्ठ आत्रेय! यह इन्द्रका अनुकरण छोड़कर यहाँका सारा वैभव समेट लो, तभी तुम कुशलसे रह सकते हो; अन्यथा नहीं।

तब आत्रेय ने कहा—'मैं अग्निकी शपथ खाकर सच-सच कहता हूँ—आपलोग जैसा कहेंगे, वैसा ही करूँगा।' दैत्योंसे यों कहकर वे पुनः विश्वकर्मासे बोले—'प्रजापते! आपने मेरी प्रसन्नताके लिये जो इन्द्रपदका निर्माण किया था, इसका फिर उपसंहार कर लीजिये और ऐसा करके मुझ ब्राह्मण मुनिकी शीघ्र रक्षा कीजिये। मुझे फिर अपना वही आश्रम लौटा दीजिये, जहाँ मृग, पक्षी, वृक्ष और जल हैं। मुझे इन दिव्य भोगोंकी कोई आवश्यकता नहीं है। मुझे इस बातका बोध हो गया है कि शास्त्रीय मर्यादाका उल्लंघन करके प्राप्त की हुई कोई भी वस्तु सुखद नहीं होती।'

'बहुत अच्छा' कहकर प्रजापतिने उस इन्द्रपुरीके वैभवको समेट लिया। आत्रेय भी गौतमी-तटपर रहते हुए पुनः तपस्यामें संलग्न हो गये। [ब्रह्मपुराण]

नवीन विशिष्ट प्रकाशन—शीघ्र उपलब्ध

श्रीमद्भगवद्गीता [सचित्र, ग्रन्थाकार, चार रंगोंमें आर्ट पेपरपर]—जिज्ञासु पाठकोंकी विशेष माँगपर सचित्र श्रीमद्भगवद्गीता मोटे अक्षरोंमें श्लोकार्थसहित पहली बार प्रकाशित की जा रही है।

प्रथमोऽध्याय:

॥ ॐ श्रीपरमात्मने नमः ॥

श्रीमद्भगवद्गीता

अथ प्रथमोऽध्यायः

धृतराष्ट्र उवाच

धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे समवेता युयुत्सवः।
मामकाः पाण्डवाश्चैव किमकुर्वत सञ्जय॥

धृतराष्ट्र बो... ...की इच्छावाले मेरे और...

श्रीमद्भगदगीता

के एक पृष्ठका नमूना (कोड 2267)

मूल्य ₹ 250, डाकखर्च ₹ 70

दृष्ट्वा तु पाण्डवानीकं व्यूढं दुर्योधनस्तदा।
आचार्यमुपसङ्गम्य राजा वचनमब्रवीत्॥

संजय बोले—उस समय राजा दुर्योधनने व्यूहरचनायुक्त पाण्डवोंकी सेनाको देखकर और द्रोणाचार्यके पास जाकर यह वचन कहा॥ २॥

प्र० ति० 20-03-2021
रजि० समाचारपत्र—रजि०नं० 2308/57 पंजीकृत संख्या—NP/GR–13/2020–2022

LICENSED TO POST WITHOUT PRE-PAYMENT	LICENCE No. WPP/GR–03/2020–2022

आवश्यक सूचना

पाठकोंसे निवेदन है कि पुस्तक अथवा कल्याण मँगवानेके लिये जो धनराशि आप बैंक अथवा पोस्ट ऑफिसके माध्यमसे भेजते हैं, उसकी सूचना यथाशीघ्र ई-मेल अथवा पत्रके माध्यमसे **गीताप्रेस, गोरखपुरको पत्राचारके पूरे पते मोबाइल नम्बरके साथ अवश्य भेज दिया करें** ताकि आपद्वारा भेजी गयी धनराशिका शीघ्र समायोजन करके पुस्तकें भेजी जा सकें।

e-mail : kalyan@gitapress.org ; Mob.: 09235400242/244; WhatsApp 9648916010
e-mail : booksales@gitapress.org ; फोन : (0551) 2334721, 2331250, 2331251; Mob.: 7355744761

व्यवस्थापक—**गीताप्रेस, गोरखपुर—273005 (उ०प्र०)**